

\* श्री व्रीगुहपौराणी जयतः \*

स वै पुमां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजं ।

—  
पूर्वोत्कृष्ट  
विद्युतेन  
पुमां विद्युतेन  
भक्तिः  
स्मृतः  
धर्मः



\* अहैतुक्यप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति । \*

सबोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।  
भक्ति अधोक्षज की प्रहृतुकी विघ्नशूल्य ग्राति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का थेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।  
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो अम व्यर्थ सभी केवल बंधनकर ।

वर्ष १३ { गौराब्द ४८२, मास—त्रिविक्रम २, वार—प्रद्युम्न  
मंगवार, ३१ वैशाख, सम्वत् २०२५, १४ मई, १९६८ } संख्या १२

## श्रीकार्पण्यपञ्जिकास्तोत्रम्

( श्रील-स्वप्न गोस्वामी-विरचितम् )

[ गताङ्कसे आगे ]

सबैसौ-दर्यमर्यादानीराज्यपदनीरजी ।

किमपूर्वाणि पर्वाणि हा ममाक्षोविधास्य ? ॥३१॥

हे नाथ श्रीकृष्ण ! हे श्रीमती राधिके ! जगत्का निखिल सौन्दर्यं आप दोनोंके  
जिन चरणारविन्दोंकी आरती उतारता है, अपने उन श्रीचरणारविन्दोंका दर्शन करा  
कर मेरे नेत्रोंका अपूर्वं उत्सव—आनन्द कव विधान करेंगे ? ॥३१॥

सुचिराशाफलाभोगपदाम्भोजविलोकनी ।

युवां साक्षाज्जनस्यास्य भवेतामिह कि भवे ? ॥३२॥

हे नाथ श्रीकृष्ण ! हे श्रीमती राधिके ! तुम्हारे श्रीचरणारविन्दोंके दर्शनसे जीव की चिर-अभिलिखित मनोवाक्षाएं पूर्ण हो जाती हैं, क्या मुझे इस जन्ममें तुम दोनों के दर्शन होंगे ? ॥३२॥

कदा वृन्दावनोकुञ्जकन्दरे सुन्दरोदयौ ।

खेलन्तौ वां विलोकिष्ये सुरतौ नातिदूरतः ? ॥३३॥

हे दयामय श्रीकृष्ण ! हे दयामयी श्रीराधिके ! वृन्दावनके निकुञ्जमें अथवा गिरिराज गोवद्धनकी कन्दरामें स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करते हुए तुम दोनोंका मैं अति निकट स्थानसे क्या कभी दर्शन कर सकूँगा ? ॥३४॥

गुर्वायित्ततया द्वापि दुलंभान्योऽयवीक्षणौ ।

मिथः सन्देशाशीधुभ्यां नन्दयिष्यामि वां कदा ? ॥३५॥

माता-पिता आदि गुरुजनोंके निकट रहनेपर तुम दोनोंका परस्पर मिलन होना अत्यन्त कठिन हो पड़ता है, उस समय दोनोंको परस्परका संदेशरूप अमृत दान करके मैं तुम्हें कब आनंदित करूँगा ? ॥३५॥

गवेषयन्तावन्योऽन्यं कदा वृन्दावनान्तरे ।

सङ्घमय्य युवां लप्स्ये हारिणं पारितोषिकम् ? ॥३६॥

अहो ! वृन्दावनमें तुम दोनोंमें विभोग होनेपर अत्यन्त विरहमें व्याकुल होकर एक-दूसरेको ढूढ़ते हुए तुम दोनोंका मिलन करा कर मैं तुम लोगोंसे पारितोषिकके रूप में हार और पदक आदि आभूषणोंको कब प्राप्त करूँगा ? ॥३६॥

पणीकृतमिथोहारतुंचनव्यप्रहस्तयोः ।

कर्लि द्यूते विलोकिष्ये कदा वां जितकाशिनोः ? ॥३७॥

अहो ! मुझे ऐसा कब सौभाग्य प्राप्त होगा, जब कि वृन्दावनके किसी कुञ्जमें द्यूत-कीड़ाके समय गलेके हारको दावपर रखकर तुम दोनों ही—‘मेरी जीत हो गयी’ —ऐसा कह-कह करके उस हारके लिए छीना-झपटी करते हए प्रेम-कलहमें संलग्न रहोगे, तब ऐसे तुम दोनोंका मैं दर्शन करूँगा ? ॥३७॥

कुंजे कुसुमशब्दायां कदा वामपिताज्ञयोः ।  
पादसम्बाहनं हन्त जनोऽयं रचयिष्यति ? ॥३७॥

अहो ! कुञ्जमें कुसुमशब्दायापर परस्पर अगोंपर अंग अपर्णे कर शयन कर रहे तुम दोनोंका प्रीतिपूर्वक पद-सम्बाहन करनेका सौभाग्य मुझे कब प्राप्त होगा ? ॥३७॥

कन्दर्पकलहोदघट-वुटितानां लतागृहे ।  
कदा गुम्फाय हाराणां भवन्ती मां नियोक्ष्यतः ? ॥३८॥

अहो ! लतागृहमें कन्दर्प-कलहके समय अपने-अपने गलेके हारोंके टूट जानेपर उन्हें फिरसे गूँथनेके लिए तुम लोग मुझे कब नियुक्त करोगे ? ॥३८॥

केलिकल्लोल-विलस्तान् हन्त वृन्दावनेश्वरौ ।  
कर्हि वर्हिपतत्रैवी मण्डयिष्यामि कुन्तलान् ? ॥३९॥

हे वृन्दावनेश्वर ! हे वृन्दावनेश्वरी ! कन्दर्प-कीडाके समय तुम्हारे बिखरे हुए केश-पाशको फिरसे बाँधने तथा उसको मोर-पंखसे छजानेकी अपनी साध मैं कब पूर्ण करूँगा ? ॥३९॥

कन्दर्पकेलिपाण्डित्यखण्डताकल्पबोरहम् ।  
कदा वामलिकद्वन्द्वं करिष्ये तिलकोजज्वलम् ? ॥४०॥

अहो ! कन्दर्प-कीडामें तुम युगलकी वेश-भूषा अस्त-व्यस्त हो जानेपर तुम्हारे तिलक शून्य ललाट पर तिलककी रचना करके मैं तुम युगलको कब फिरसे विभूषित करूँगा ? ॥४०॥

देवोरस्ते वनलग्भिर्हंशौ ते देवि कज्जलैः ।  
अयं जनः कदा कुंजमण्डपे मण्डयिष्यति ? ॥४१॥

हे देव ! निकुंजवनमें तुम्हारे वनमाला-रहित वक्षःस्थलपर फिरसे वनमाला धारण कराकर तथा हे देवि ! तुम्हारे कज्जल शून्य नेत्रोंमें फिरसे काजल पहना कर मैं तुम युगलको कब विभूषित करूँगा ? ॥४१॥

जाम्बूनदाभताम्बूलीपणान्यवदलय्य वाम् ।

बदनाम्बुजयोरेष निधास्यति जनः कदा ? ॥४२॥

सोनेके रंगवाले पके हुए पानेके पत्तोंसे डंठलोंको दूर कर उसमें खदीर आदि विविध प्रकारके सुगन्धित चूरणोंको देकर उन्हें तुम युगलके मुखमें कब अर्पण करूँगा ? ॥४२॥

क्वासौ दुष्कृतकर्महिं क्य वामम्पर्यनेहश्चो ?

कि वा कं वा न युवयोरुन्मादयति माधुरी ? ॥४३॥

अहो ! पापोंमें आसक्त कहाँ मैं और कहाँ ये अत्यन्त दुलंभ प्रार्थनाएँ; वास्तवमें मुझ जैसे क्षुद्र व्यक्तिके लिए इन प्रार्थनाओंकी प्राप्ति असंभव होनेपर भी तुम युगलकी रूपमाधुरी और लीला-माधुरी—ये दोनों किसको उन्मादित नहीं करती ? अर्थात् सभी को उन्मादित करती हैं, अतएव मैं भी उम्मत होकर ऐसी प्रार्थनाएँ कर रहा हूँ ॥४३॥

यथा वृन्दावने जन्तुरनहोऽप्येष वास्यते ।

तर्यव कृपया नाथो सिद्धि कुरुतमीप्सितम् ॥४४॥

हे नाथ वृन्दावनेश्वर ! हे देवी श्रीराधिके ! तुम्हारी जिस कृपासे ही मैं इस वृन्दावनमें वास कर रहा हूँ, आपकी वही कृपा मेरी अभीष्ट-सिद्धि भी करें ॥४४॥

कार्पण्यपञ्जिकामेतां सदा वृन्दाटवीनटी ।

गिरेव जलपतोऽप्यस्य जन्तोः सिद्ध्यतु वाञ्छितम् ॥४५॥

हे वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण ! हे वृन्दावन विहारिणी श्रीराधिके ! मैं बाणीद्वारा इस 'कार्पण्यपञ्जिका' नामक स्तोत्रका सदा-सर्वदा अनुशीलन करता हूँ। अतएव मेरी यह कातर प्रार्थना है कि मेरा यह उक्त अभीष्ट पूरण हो ॥४५॥

इति कार्पण्यपञ्जिकास्तोत्रं समाप्तम् ।

# अनर्थयुक्त व्यक्तिका स्वप्नदर्शन और यथार्थ भजन

श्रीश्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रो विजयतेताम्

सारस्वत चतुष्पाठी

विडन स्कायर

कलकत्ता

आपका कृपा-पत्र मिला । मैं पिछले सप्ताह यहाँ आया हूँ । विमुख जगतमें प्राप्त निराशामें श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपाका अनुभव कर हृदय कृतज्ञताके भावसे भर जाता है ।

कृष्ण या कृष्णभक्तोंका संग करना चाहिए । भगवद्भक्तिकी इच्छा रखनेवालेके लिए इन दोनोंके अतिरिक्त अन्य लोगोंका संग करना उचित नहीं है । कृष्ण और कृष्णभक्तोंका संग कल्याणकारी, उपादेय और नित्य होता है । दुःसंग अर्थात् कृष्णके अतिरिक्त अन्य लोगों या वस्तुओंका संग करनेसे अमंगल होता है । इसलिए कृष्णविमुख अभक्तोंका या जो कृष्णभक्ति नहीं है ऐसे विषयोंका आप आदर नहीं करेंगे ।

स्वप्न—अमूलक और अपनी भोगमय चिन्ताओं का परिचय मात्र है । उसे पूर्व दुःसंगका फल कह सकते हैं । इसलिए स्वप्नकी बातको लेकर व्यर्थ ही चिन्तित होनेकी आवश्यकता नहीं है ।

जो दिव्य-ज्ञान प्रदान कर पापोंको सर्वथा नष्ट कर दे—उसे दीक्षा कहते हैं—

विव्यं ज्ञानं यती ब्रह्मात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम् ।

तस्मादीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकंस्तत्त्वकोविदेः ॥

ऐसी दीक्षा देकर जो व्यक्ति हमारे भन्तःकरणमें दिव्यज्ञानका उन्मेष कर पाप-वासना आदिको समूल ध्वंश करे, वही सद्गुरु है; और वही भावरणीय एवं संगके लिए उपयुक्त है । जो व्यक्ति आपके हृष्यमान जगतके भोक्ताभिमानको नष्ट नहीं कर सकते, वे मनकी कैसे रक्षा कर सकते हैं । सम्पूर्ण शास्त्रों एवं महाजनोंका यह निश्चित सिद्धान्त है कि जो लोग सांसारिक मोह-ममता एवं विषय-भोगोंके जालमें बँधे हुए हैं, उनके साथ पारलोकिक आलोचना या अनुशीलन करनेसे विषयकी मलिनता स्पर्श करती है । अतः श्रेयःकामी साधकोंको ऐसे लोगोंसे सावधानी पूर्वक दूर रहना चाहिए ।

प्रत्येक कल्याणकामी व्यक्तिको श्रीमन्महाप्रभुके श्रीमुख विगतित इस इलोकको सर्वदा स्मरण रखना चाहिए—

निष्कञ्चनस्य भगवद्भजनोन्मुख  
पारं परं जिगमिषोमंवसागरस्य ।

संदर्शनं विषयिणामथ योषिताच्च  
हा हन्त-हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥'

—अहो ! जो लोग त्रिविद्धतापोंसे खीलते हुए भीषण भवसागरको पार करने की इच्छा रखते हैं उनके लिये विषय और खी—इन दोनोंके संगकी तो बात ही क्या, उनका दर्शन भी नहीं करना चाहिए । क्योंकि विषयी और खियोंका सन्दर्शन विष-भक्षणसे भी बढ़कर असाधु है ।

विद्वाशाक्त मिथ्रके साथ परमार्थके विषयमें अलोचना करना—दुःसंग करना है । फलस्वरूप निद्राके समय कृष्णविमुखतापूर्ण विषयोंके स्वप्न होंगे ही । संसार या हरिविमुखताको आप अभी भी आदर करते हैं, सांसारिकता और हरिविमुखता । दूसरे व्यक्तियोंको आप भी गुरु तुल्य गौरव प्रदान करते हैं—यहीं तो आपकी या मेरी हरिविमुखता है । ऐसी हरिविमुखताको छोड़कर साधुवचनोंका आदर करेंगे । ऐसा होनेसे ही हृदय के अन्तरतममें छिपी हुई विषय भोगवासना छिप होगी । जबतक आप-अपनेको फलभोगी कर्मियोंकी भाँति एक जड़ीय सांसारिक भिक्षुक समझ कर कृष्णोत्तर ( विषय-भोग या निविशेषमुक्ति ) वस्तुकी देते रहेंगे, तबतक पाठ्यविचार और भोक्तापनका अभिमान आपको बलेश देते रहेंगे ।

दस प्रकारके नामापराधोंसे बचकर सर्वदा हरिनाम करें । शुद्ध हरिनाम उच्चारणकारी अपने पूर्व-पूर्व जन्मोंमें ही कर्म-भोगमयी दीक्षा आदि कार्योंको कर चुका है—ऐसा निश्चित रूपमें समझ लेंगे ।

दीक्षा ग्रहण करनेसे हरिनाममें रुचि उत्पन्न होती है । आप कर्म-बन्धनसे मुक्त—नामपरायण हरिदास हैं । आपको फिरसे दीक्षा आदि बाह्यकर्मोंमें क्यों रुचि हो रही है ? क्या आपने एक बार भी हरिनाम उच्चारण नहीं किया है ? फिर कर्म बन्धनरूप संसारसे मुक्त होने जाकर पुनः कर्मभोग की प्रवृत्ति क्यों पैदा हो गयी ? जीव अज्ञानतासे मोहित—मूढ़ होनेपर ही अपनेको अभावप्रस्त मानता है । उसी समय उसमें कर्म-प्रवृत्तिका उदय होता है तथा वह धनी होनेके लिए कर्ममार्गका आश्रय ग्रहण करता है ।

मुक्त हरिदासगण हरिनाम करते हैं । बद्धजीव हरिदास्यका तात्पर्य न समझनेके कारण Elevationist होकर साम्प्रदायिकताका शिकार हो पड़ते हैं । आप जैसे नामपरायण व्यक्तिके लिए वैसे पचड़े में पड़ना उचित नहीं । 'दुःसंगसे कृष्णकी प्राप्ति नहीं होती ।' दुःसंग छोड़कर सत्संग ग्रहण करनेसे भगवद्भक्ति लाभ होती है ।—इस बातको सर्वदा स्मरण रखें । इस विषयमें और अधिक कहना व्यर्थ है ।

\*\*\* श्रीतोषणीके 'दुःसंग'—प्रबन्धके अतिरिक्त अन्यान्य प्रबन्धोंका लेखक कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है, उन्होंने स्वयं ही उन सारे प्रबन्धोंको लिखा है । उनकी भाषा चिरदिन ही कठोर रही । आपलोग सुलिलित भाषाद्वारा उनकी कठोरताका अभाव पूर्ण कर समाजका कल्याण करें । उन प्रबन्धोंका पुनः पुनः अनुशीलन करनेसे आपकी भी वैसी ही नित्य-वृत्ति हो उठेगी । तब भाषाकी कठिनता—कोमलता

के रूपमें धीरे-धीरे बदल गयी है—ऐसा आप स्वयं ही उपलब्धि करेंगे।

अवैष्णव लोग जिस प्रकार से अपनेको विषयों का भोक्ता मानकर विषयोंको भोग्यके रूपमें दर्शन करते हैं, आप भी सांसारिक विषयोंका दर्शन उसी रूपमें करते हैं? समस्त विषयोंको कृष्णाकी सेवाका उपकरण दर्शन करनेसे आपकी कोई हानि नहीं हो सकेगी। दूसरी बात, भक्तके वैष्णविक बलेश या मुखको दुख या सुख मानना भी गलत है। लौकिक जड़मय विश्वासके आधार पर हरिस्मवन्धीय वस्तुओंको 'विषय' माननेसे जड़ासत्ति प्रबल होगी और शीघ्र ही वह जड़सुखके रूपमें परिणत हो पड़ेगी। जड़ सुख कदापि कृष्ण-प्रेम नहीं है। कृष्णलीला सम्पूर्णरूपसे चिन्मयी लीला है। उसे लौकिक विचारोंके अन्तर्गत खींचनेकी चेष्टा करना अपराध है।

सदा-सर्वदा सत्संगमें रहेंगे तथा सन्तोंकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सत्संग और साधुपुरुषोंकी सेवा करते हुए जीवन व्यतीत करेंगे।

जड़ जगतमें द्रष्टा, विचारक, भोक्ता और ज्ञाता आदिका अभिमान प्रबल रहने पर हरिस्मवन्धी चेष्टाएँ भी मायिक वस्तुओंके समान ही प्रतीत होता है। परन्तु इसके विपरीत वैष्णवकी सेवासे—आप हश्य जगतको हरिसेवोन्मुख देखेंगे। साथ ही अपने शरीर, वचन और मनको भी हरिसेवोन्मुख के रूपमें देखेंगे। कृष्णको सुखी करनेके लिए ही हमारी अखिल चेष्टाएँ होनी चाहिए। अद्वयज्ञान त्रजेन्द्रनन्दन और उनके सेवकगण सांसारिक जड़ विषय नहीं हैं। वे आपकी लौकिक इन्द्रियोंके वशी-भूत नहीं हैं। उनके प्रति सेवोन्मुख वृत्ति होनेपर ही वे सेष्य-विषयके रूपमें अप्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा देखे और अनुभव किये जा सकते हैं।

आशा है आप कुशलपूर्वक हैं।

शुद्धवैष्णवदासानुदास  
अकिञ्चन  
श्रीसिद्धान्त सरस्वती

## रे मन गौर-गौर नित गइये

रे मन गौर-गौर नित गइये।

जिनके गौर प्राण धन सरवस, तिनके पद तिर नहइये।

जो जन गौरचन्द्र यश गावत, तिनकी बलि-बलि जड़िये॥

जो गौराङ्ग को ध्यान धरत हैं, तिनहीं के सञ्ज्ञ रहिये।

'सूरज' श्रोगौराङ्ग भक्त तज, अन्ते कबहु न जड़िये॥

—चैतन्य पदावलीसे संग्रहीत

## प्रश्नोत्तर

### [ स्मृति-प्रस्थान ]

#### पुराण और पंचरात्र

**प्रश्न—**(१) वेदोंमें सबका अधिकार नहीं है, परन्तु पुराणोंमें सबका अधिकार है। इसीलिए क्या पुराण-शास्त्र वेदोंसे निम्नकोटि में हैं?

उ०—'निखिल निगम रूप कल्पलताका सार ही—'कृष्ण' नाम है। जिस प्रकार वेदमें सबका अधिकार नहीं रहनेपर भी उनके सार—कृष्ण-नाम में जीवमात्रका अधिकार होनेपर 'श्रीकृष्ण' नाम की महिमा कुछ कम नहीं हो जाती, उसी प्रकार वेद-नुल्य पुराणों और महाभारत-रामायणमें सब का अधिकार होनेसे इनकी महिमा कम नहीं मानी जा सकती है। जिन व्यासदेवने वेदका विभाग किया है, वे व्यासदेव ही पुराणों और इतिहास (रामायण-महाभारत) के संग्रहकर्ता हैं। अतएव पुराणोंका माहात्म्य वेदोंके समान ही है; कम नहीं।'

— पठसन्वर्भ, स. तो. १११०

(२) गीताका प्रतिपाद्य विषय क्या है? गीता के बीचबाले छः अध्यायोंमें भक्तिका विचार स्थित रहनेका तात्पर्य क्या है?

उ०—'गीतामें अठारह अध्याय हैं। उनमेंसे प्रथम छः अध्यायोंमें कर्म, द्वितीय छः अध्यायोंमें भक्ति और तृतीय छः अध्यायोंमें ज्ञानका पृथक-

पृथक् रूपमें विचार देकर अंतमें भक्तिकी ही श्रेष्ठता स्थापित हुई है।

**भक्ति—**अत्यन्त गूढ़ तत्त्व, ज्ञान और कर्म दोनोंके ही प्राण-स्वरूप तथा अर्थ साधक होनेके कारण ही गीताके मध्यस्थित छः अध्यायोंमें सनिविष्ट हुई है।'

— अवतरणिका, गीता र. र. भा.

(३) गीताके विचारसे जीवका चरम उद्देश्य क्या है?

उ०—'गीताके अनुसार विशुद्ध भक्ति ही जीव का चरम उद्देश्य है। गीताके अन्तमें 'सर्वधर्मानि परित्यज्य' इलोकमें भगवानकी शरणागतिको ही सर्वगुह्यतम उपदेश बतलाया गया है।'

अवतरणिका गी. र. र. भा.

(४) गीताका उद्देश्य व्या युद्धके लिये तैयार करना नहीं है?

उ०—'कदापि नहीं, अजुनका युद्ध अंगीकार—अधिकारके अनुरूप निष्ठाका परिचायक या उदाहरणमात्र है, चरम उद्देश्य नहीं।'

— अवतरणिका गी. र. र. भा.

(५) गीताका गूढ़ तात्पर्य क्या है?

उ०—'गीताका गूढ़ तात्पर्य यह है कि जो व्यक्ति जिस स्वभावका है, उसके अनुरूप ही उसका अधि-

कार है। उसी अधिकारके लिए निदिष्ट जीवन-निवाहोपयोगी कर्मको स्वीकार करके परतत्त्वका अनुसंधान करना ही कल्याण है; इसीमें श्रेयः निहित है।'

—अवतरणिका गो. र. र. भा.

(६) सात्त्वती श्रुति कौन है?

उ०—श्रीमद्भागवतकी ही सात्त्वती श्रुति कहते हैं।

—पटमन्दभं स तो १११०

(७) कौन-कौनसे ग्रन्थोंका पाठ करनेसे आत्म कल्याण होता है?

उ०—'जिन ग्रन्थोंमें शुद्ध भक्तिका उपदेश या वर्णन हैं, ऐसे वेद, पुराण, उपनिषद्, पञ्चरात्र और महाजनोंके रचित मीमांसा ग्रन्थोंका पाठ करना चाहिए। अन्य मतके ग्रन्थोंसे केवलमात्र तकं की शिक्षा ही प्राप्त होगी।

—स. तो. तत्त्वकर्म प्रवर्तन ११६

(८) कौन सा ग्रन्थ सर्वशास्त्रोंका परिपाक—सार-ग्रन्थ है?

उ०—'गीता शास्त्र ही सम्पूर्ण शास्त्रोंका परिपाक ग्रन्थ है। जो लोग गीताके अमृतमय उपदेशोंको प्राप्त नहीं करते, वे अत्यान्य शास्त्रोंका ज्ञान रखने पर भी उनका भार होने वाले—भारवाही गर्दभ तुल्य ही हैं।

—समालोचना स तो. १२१६

(९) वेदोंके यथार्थ अर्थोंको प्रकाशित करने वाला कौन-सा ग्रन्थ है?

'पुराणोंमें ही वेदका यथार्थ अर्थ प्रकाशित हुआ है। उपनिषद् आदि वेदोंमें जिस परम तत्त्वका

प्रतिपादन किया गया है, पराशर और वेदव्यास आदिने उसी परम तत्त्वका प्रतिपादन बड़े ही सरल और सहज रूपसे पुराणोंमें किया है। पुराण—वेदोंके भाष्य-स्वरूप हैं, इनकी भाषा बोधगम्य है—सत्सम्प्रदायोंका ऐसा विश्वास है।'

(१०) वेदका तात्पर्य ठोक-ठोक रूपमें कहाँ मिल सकता है?

उ०—'वेदोंका तात्पर्य अतिशय गूढ़ है। मह-पियोंने वेदोंका तात्पर्य साधारण लोगोंको समझाने के लिए ही पुराणोंको प्रकाशित किया है। इन पुराणोंमें ही वेदका तात्पर्य निहित है।

—अ. प्र. भा. म. ६। १४३-१४८

(११) 'सत् क्रियासार-दीपिका' और कर्मयों द्वारा रचित स्मृति-ग्रन्थोंमें व्या भेद है?

उ०—श्रीमद् गोपालभट्ट गोस्त्वामीने भक्तोंके सद्वर्मकी रक्षाके लिए इस सत् क्रियासार-दीपिका नामक ग्रन्थकी रचना की है। वेदिकानुशासनक्रमसे अनिरुद्ध भट्ट, भीमभट्ट और श्रीमद्भगविन्दानन्द भट्ट आदि स्मार्त-पद्धतियोंने कर्मयोंके लिए स्मार्त-पद्धतिका संकलन किया है। श्रीनारायण भट्टने कर्मयोंके लिये तथा श्रीमद्देवभट्टने वेदानुष्ठाताओंके लिए स्मृति-ग्रन्थोंका संकलन किया है। वर्णाश्रमके अन्तर्गत तथा उसके बहिर्भूत वर्णोंमें उत्पन्न गोविन्द भक्तोंके लिए वेद-पुराण और मनु आदि के प्रणीत धर्मशास्त्रोंसे प्रमाण-वाक्य संग्रह पूर्वक सेवा और नामापराध विचार-पूर्वक पितृदेवाचर्चन पद्धतिका त्याग करके यह सत् क्रियासार-दीपिका-पद्धति रचित हुई है।

—स. सा. दी. ( बंगानुवाद )

—जगद्गुरु श्रील भक्तिविनोद ठाकुर

## श्रीकृष्ण-सन्दर्भ

[ २४ ]

**गोपियोंका शरीर तथा उनका पारकीय भाव**

गोप-गोपियाँ श्रीकृष्णके नित्य-परिकर हैं।

नित्य-परिकरोंका भौतिक शरीर ग्रहण और त्याग नहीं होता, बल्कि उनके शरीर नित्य और विशुद्ध चिन्मय होते हैं। गोपियोंकी आत्मा और शरीर मायावद्व जीवोंकी भाँति अलग-अलग नहीं होते। फिर श्रीमद्भागवतके रास-प्रसङ्गमें नित्य परिकर कृष्ण-प्रेयसी गोपियोंके गुणमय देहत्यागका उल्लेख क्यों है?—इस प्रश्नका उत्तर यह है कि ब्रजगोपियाँ दो प्रकारकी हैं—नित्यसिद्धा और साधकचरी, इनमेंसे साधकचरी गोपियोंकी देहें असिद्ध होती हैं। इन असिद्ध देहवाली साधकचरी गोपियोंमेंसे ही कतिपय गोपियोंने अपने-अपने पतियोंद्वारा श्रीकृष्ण के पास जानेसे रोकी जाने पर अपने-अपने गुणमय देहको त्याग दिया था।

श्रीराधिकाजी तो भगवानकी ह्लादिनी शक्ति ही है। ललिता, विशाखा आदि नित्यसिद्धा गोपियाँ हैं। श्रीकृष्ण जिसप्रकार गोप रूपमें स्वयं-भगवान है, उसी प्रकार ये भी गोपी-रूपमें नित्य-कृष्ण-प्रेयसी हैं। और जो साधन द्वारा गोपी-गम्भेसे जन्म लेनेवाली गोपियाँ हैं, वे साधकचरी कहलाती हैं। दण्डकारण्यके ऋषिगण तथा श्रुतियाँ—जिन्होंने कठोर साधन करके भगवत् कृपासे गोपीदेह प्राप्त किया था—साधकचरी गोपियाँ हैं। श्रीमद्भागवत

में इन्हींके गुणमय देहत्यागके प्रसंगमें ऐसा कहा गया है—

अन्तर्गृहगता काश्चिद् गोप्योऽलव्यविनिर्गमः ।

कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मैलितलोचनाः ॥

दुस्सहप्रेष्टविरहं तीव्रं तापघुतायुभाः ।

ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिरुत्या भीणमङ्गलाः ॥

तनेव परमात्मानं जारुद्यापि संगताः ।

जहुरुणमवं देहं सद्यः प्रदीण बन्धनाः ॥

— ( श्रीमद्भा० १०।२६।६-११ )

शरदपूर्णिमाके चार्दिने आकाश-मण्डलमें उदित होकर अपनी लाल-लाल कोमल किरण प्रभासे समस्त वनप्रदेशको प्रकाशित एवं सुरक्षित कर दिया है। इसी समय श्रीकृष्णने मुललित स्वरोमें मधुर मुरलीका चादन किया। ब्रजमुन्दरियोंका मन तो पहलेसे ही श्यामसुन्दरने अपने वशमें कर लिया था। अब वे इस वेगुगीतको सुनकर सर्वथा विमुग्ध हो गयों। वे लोकलज्जा, आर्यपथ, मर्यादा और धैर्यको छोड़कर वेसुध-होकर श्रीघ्रनापूर्वक जिघरसे वेगु-द्वनि आ रही थी—उधर ही चल पड़ों। नित्यसिद्धा सहचरियोंको तो कोई रोक ही नहीं सकता था। दण्डकारण्यवासी महर्षि आदि जो गोपी-देहको प्राप्त थे, वे साधनसिद्धा गोपियाँ थीं; उनमेंसे कुछ गोपाङ्गनाएँ श्रीकृष्णको कुछ दूसरे रूपमें प्राप्त हुईं। ऐसी गोपियाँ, जिस समय मुरली

ध्वनि हुई, उस समय पतिकी सेवाके लिये घरके भीतर गयी हुई थीं। वेणु-ध्वनि श्वरण करते ही श्रीकृष्ण समीप गमन करनेके लिये पामल हो उठी। परन्तु पतियोंने उन्हें भीतर ही रोक कर दरबाजे बन्द कर दिये; इसलिए उनको बाहर निकलनेका मार्ग ही न मिला। तब वे कोई दूसरा उपाय न देखकर आँखें मूँदकर उन प्रियतम श्रीकृष्णका बड़ी तन्मयतासे ध्यान करने लगीं।

परम प्रियतम श्रीकृष्णके साक्षात् मिलनेमें जब यों बाधा पड़ी, तब उसी क्षण उनके हृदयमें असह्य विरहकी तोत्र ज्वाला धधक उठी, जिससे उनके अन्दरका जो कुछ लेशमात्र अशुभ-संस्कार—श्रीकृष्ण प्राप्तिमें बाधा-स्वरूप गुरुजनोंका भय, लोकप्रवादका भय आदि शेष था, वह सारा भस्म हो गया। फिर तुरन्त ही वे श्रीकृष्णके ध्यानमें निमग्न हो गयीं और ध्यानमें श्रीकृष्णका आलिङ्गन प्राप्त होनेमें उनका मंगल—श्रीकृष्ण-प्राप्तिके उपाय-स्वरूप सखियोंकी सहायता आदिका चिन्तन भी तिरोहित हो गया।

यहाँ इनोकके 'अशुभ' और 'मंगल'-शब्दोंके जो 'अथ' किये गये हैं, उसका कारण बतला रहे हैं कि निन्दित कर्मोंसे 'अशुभ' और वेद-विहित पुण्यजनक कर्मोंसे 'मंगल' होता है। भगवत्-परिकरोंका कर्म-वन्धनहेतु जन्म असंभव है, इसलिए उनका अशुभ या मंगल नहीं है। इस विषयमें विष्णुपुराणका सिद्धान्त है—

'न कर्मवन्धनं जन्म वैष्णवानान्व विद्यते।'

—वैष्णवोंका कर्मवन्धन हेतु जन्म नहीं होता।

तब उनके जन्म आदिकी जो कथाएँ सुनी जाती हैं, वह भक्ति, भक्ति या भगवानकी इच्छासे ही समझना चाहिए। अतएव गोपियोंके सम्बन्धमें 'अशुभ' या 'मंगल'-शब्दोंके उत्तर प्रकारके 'अथ' ही सुसंगत हैं। वे आनन्द चिन्मय रस-प्रतिभावित—प्रेमकी प्रति-मूर्तियाँ हैं। उनकी गुणमय देहमें स्थित जिस 'अशुभ' शब्दका उल्लेख है, उसका दूसरा भी 'अथ' हो सकता है।

भृगुमुनिने जिस समय श्रीहरिके वक्षःस्थल पर लात मारी, उस समय भगवानने बड़ी ही नम्रता-पूर्वक कहा—

अद्याहं भगवेऽलक्ष्म्या आसामेकान्तमाजनम् ।

ब्रह्मस्यत्पुरसि मे भूतिमंवतपादहतांहसः ॥

—( श्रीमद्भागवत १०।८।११ )

—हे भगवन् ! आज मैं लक्ष्मीजीका एकान्त आश्रय हूँगा। आपके पदस्पर्शसे मेरे सारे पाप दूर हो गये। लक्ष्मीजी अब सदा-सर्वदा मेरे वक्षःस्थल पर स्थिर रूपसे निवास करेगी।

जिनके नामका श्वरण मात्र करनेसे अशेष पातक समूल ही ध्वंस हो जाते हैं, उन भगवद्विग्रह में लेशमात्र भी पाप-स्पर्शकी भला संभावना भी कैसे हो सकती है ? तब श्रीहरिके वक्षःस्थल पर लात मारनेसे भृगुमुनिके हृदयमें जो अनुतापकी ज्वाला धधकने लगी थी, उसे शान्त करनेके लिए ही भगवानका ऐसा कथन है। यहाँ पर जिस प्रकार से भगवानके वाक्योंकी यथार्थता की रक्षाके लिए अर्थात् तर किया गया है, उसी प्रकारसे रास-प्रसंगमें भी गोपियोंके सम्बन्धमें उल्लिखित—'अशुभ' और

'मंगल'-वाचोके उक्त रूपसे अथन्तर होना ही सुसंगत है। अतः महाराज परीक्षित कुछ सदेहका प्रदर्शन करते हुए पूछते हैं—

कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु व्रह्यतया मुने।  
गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणाधियां कथम् ॥

—( श्रीमद्भागवत १०२६।१२ )

— श्रीकृष्ण-माधुरीका नित्यमनन करनेवाले श्रीशुकदेवजी ! गोपियां तो श्रीकृष्णको केवल परम प्रियतमरूपसे ही जानती थी; वे साक्षात् परमब्रह्म हैं, ऐसा तो वे जानती नहीं थीं। उनकी बुद्धि तो श्रीकृष्णके सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्य आदि गुणोंमें ही लगी हुई थी। ऐसी स्थितिमें वे गुणयुक्त बुद्धिवाली होकर भी गुणप्रवाह—संसार-प्रवाहमें मुक्त कैसे हो गयीं ?

इस प्रश्नके उत्तरमें श्रीशुकदेव कुछ भुझना कर इस प्रकार बोले—

उक्तं पुरस्तादेतत्ते चेष्टः सिद्धिं यथा गतः ।  
हृष्पन्नपि हृषोकेशं किमुताधोलजप्रियाः ॥  
नृणां निष्ठेयसार्थाय व्यक्तिभंगवतो नृप ।  
अव्ययस्याप्रमेयस्य निरुणस्य गुणात्मनः ॥  
कामं ब्रोधं भयं स्नेहमेवं सौहृदमेव च ।  
नित्यं हरौ विद्यतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥  
न चेवं विस्मयः कार्यो भवता भगवत्यते ।  
योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विसुच्यते ॥

—( श्रीमद्भागवत १०२६।१३-१६ )

परीक्षित ! मैं तुमसे पहले ही (सातवें स्कन्धमें) कह चुका हूँ कि चेदिराज शिशुपाल सभी इन्द्रियों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्णसे द्वेष रखने पर भी

प्राकृत शरीरको छोड़ कर सिद्धिको प्राप्त हो गया था। फिर जो गुणातीत अधोक्षज भगवान् श्रीकृष्ण की प्रिया हैं और उनमें अनन्य प्रेम करती हैं, वे गोपियां गुणमय देहको त्याग कर उनको प्राप्त करले—इसमें कौनसी आश्चर्यकी बात है ?

राजन् ! भगवान् श्रीकृष्ण जन्म-मृत्यु आदि पड़-विकारोंसे रहित अविनाशी परब्रह्म हैं, वे अपरिच्छिन्न हैं, मायिकगुणोंसे परे निखिल अप्राकृत सदगुणोंके आश्रय हैं तथा सम्पूर्ण गुणोंका नियन्त्रण करनेवाले हैं, वे तो जीवोंके परम कल्याणके लिए ही आविभूत होते हैं ।

इसलिए जो व्यक्ति किसी भी सम्बन्धमें अपने जीवनको उन प्रभुसे जोड़ देते हैं, वह सम्बन्ध चाहे सदा कामका हो, क्रोधका हो, भयका हो अथवा स्नेह, एकात्मता या सौहार्दका हो, वे निश्चय ही भगवान्में तन्मय हो जाते हैं ।

अतएव तुम सरांखे भागवतको जन्मादि रहित, योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर, ऐश्वर्य, वीर्य, यश शी, ज्ञान और वैगम्यके परम आश्रय भगवान् नन्दनन्दन श्रीकृष्णके सम्बन्धमें केवल परम प्रियतम माननेवाली गोपियोंको गुणमय देहसे कैसे मुक्ति हो गयी—इस विषयमें तनिक भी आश्चर्य नहीं करना चाहिए। गोपियोंकी तो बात ही क्या, श्रीकृष्णके सम्बन्धमें तो स्थावर आदि समस्त जगत् संसार-बन्धनसे मुक्त हो सकता है ।

इलोकके—'जारबुद्धचापि संगतः'—का तात्पर्य अति निगृहि है। जार=पर-पुरुष, बुद्धचा=ज्ञानसे, अपि=भी, संगता=मिलित होकर या प्राप्त होकर,

तात्पर्य यह कि गोपियाँ श्रीकृष्णमें पर-पुरुषकी भावना रख कर श्रीकृष्णसे मिलीं। परन्तु श्रीकृष्ण उनके लिए जार थे और ऐसे जार-पुरुष—श्रीकृष्ण से वे मिलित हुईं—ऐसी बात नहीं है। अर्थात् गोपियोंमें श्रीकृष्णके प्रति केवल जार ( उपपति ) की भावना भर ही है; वास्तवमें कृष्ण उनके 'जार' नहीं है। यदि कोई रस्सीमें सर्पकी बुद्धि करे—उसे सर्प मानकर ढर जाय, तो यह उसकी बुद्धिका भ्रम है। वास्तवमें वस्तुगत कोई परिवर्तन नहीं होता। उसी प्रकार गोपियोंकी बुद्धिमें 'श्रीकृष्ण हमारे उपपति हैं' ऐसी भावना रहने पर भी वे कदापि उनके उपपति नहीं हैं। क्योंकि श्रीकृष्ण किसीके भी जार—उपपति नहीं हो सकते। वे सबके हृदय-रमण हैं। योगमार्यके प्रभावसे ही गोपियोंकी कृष्णके प्रति जारबुद्धि है। उसी बुद्धिसे ही वे श्रीकृष्णको प्राप्त हुईं थीं यहाँ 'जार' शब्द के द्वारा उपपति भावसे भजनकी प्रबलता तथा इसके द्वारा लोकधर्म और लोकमार्यादाको अतिक्रम करके भी गोपी-प्रेमका बाधाराहित्य प्रदर्शित हुआ है। व्रजसुन्दरियोंने श्रीकृष्णसे मिलनेके लिए दुस्त्यज्य लोकधर्म और लौकिक मार्यादा आदि बाधायोंका तृणके समान त्याग कर दिया। यदि यह जार-बुद्धि न होती तो गोपी-भावकी ऐसी तीक्ष्णतांठा और गोपी-प्रेमकी मर्वातिचम्पत्कारमयी महामहिमाको प्रदर्शन करनेका कोई दूसरा उपाय नहीं था। श्रीकृष्ण-भजनमें ऐसी ही उत्कंठा आवश्यक है।

'सत्यः प्रक्षीणवन्धनाः'—इस पदसे श्रीकृष्ण-

प्राप्तिके मार्गमें गुरुजनोंके ब्रीच वास आदि बाधायों को समझना चाहिए। गोपियोंकी गुणमय देहोंके त्याग की बात कहनेसे महाराज परीक्षितके मनमें ऐसा प्रश्न उठा था।

गोपियोंका प्राकृत गुणोंके साथ सम्पर्कका अभाव रहनेपर भी श्रीकृष्ण सम्बन्धी जो प्राकृत दोष विवर्जित अनन्ताचिन्त्य अप्राकृत गुण हैं और जो परमपुरुषार्थके अन्तर्गत है उनका उनमें ( गोपियोंमें ) अभाव नहीं है। मायिक गुणसमूह—परमार्थ साधनके मार्गमें बाधक हैं। इसलिए उनका नाश होना ही बाल्कनीय है। किन्तु गोपियोंके गुणसमूह, जो कृष्ण प्राप्तिके मूलाधार हैं—उनकी निवृति बाल्कनीय नहीं हैं। गोपियोंके गुण—स्वरूपानुवन्धी गुण हैं। जबतक उनके स्वरूप हैं, तबतक उनके गुण भी हैं। उनके स्वरूप मित्य है, इसलिए उनके गुण भी नित्य हैं। स्वरूपका धृंस असंभव है, अतएव उनके स्वरूपानुवन्धी गुणमेंका भी धृंस असंभव है। इसलिए गुणसे अतीत होनेके लिए उन्हें मुक्तिकी आवश्यकता नहीं है।

'उक्तं पुरस्तात्'—पुरञ्चन उंपाख्यानकी भाँति ( खी चिन्ता करते-करते मृत्युके पश्चात् खी रूप की प्राप्ति ) व्रजसुन्दरियोंकी कृष्ण-प्राप्तिका हेतु निर्णय करना कठिन जानकर ही श्रीशुकदेव गोप्यादीने उक्त सिद्धान्तका उल्लेख किया है।

शिशुपाल और दंतवक पहले वैकुण्ठके द्वारपाल थे। एकबार सनकाति जारों कुमार शीहरिका दर्शन करनेके लिए वैकुण्ठमें उपस्थित हुए। वे सर्वदा पांच वर्षकी अवस्थावाले और नंगे रहते हैं।

उनको इस प्रकार नंग-धड़ज्ज देखकर द्वारपाल—जय और विजयने उनको श्रीहरिके पास जानेसे रोक दिया। इस पर चारों-कुमारोंने क्रोधित होकर उनको असुर योनिमें जन्म ग्रहण करनेका शाप दे दिया। ब्रह्म-शापके प्रभावसे जय-विजय पहले जन्ममें हिरण्यक्ष और हिरण्यकशिषु, दूसरे जन्ममें गारण और कुम्भकरणं तथा तीसरे जन्ममें शिशुपाल और दन्तवक हुए थे। परन्तु कुमारोंका अभिशाप जय-विजयके असुर-जन्म ग्रहण करनेका गौण कारण था। मुख्य कारण तो वैकुण्ठाधिपति श्रीहरिकी बीररसमें युद्ध-कोतुकको उपभोग करने की इच्छा है। क्योंकि तुल्य योद्धाके अभावमें युद्ध नहीं होता। पार्षदोंके अतिरिक्त भगवानके तुल्य कोई योद्धा नहीं है। इसीलिए भगवानने बीररसका रसास्वादन करनेके लिए ही अपने पार्षदोंका जगत में अवतरण कराया। असुर भावके बिना प्रतिहन्तिता असंभव होनेके कारण ही श्रीहरिने उनको असुर योनिमें पैदा किया। भगवानने उस समय जय-विजयको मान्त्रिका देते हुए कहा था—तुम लोग मृत्युलोकमें जानेसे मत डरो। अभिशापको नष्ट करनेमें समर्थ होनेपर भी मैं उसे नष्ट नहीं करना चाहता। इस शापमें मेरा अनुमोदन है। भगवानके बचनोंसे यह जान पड़ता है कि जय-विजय सनकादिके शापके बहाने श्रीभगवानकी लीला पुष्टिके लिए ही पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए थे। श्रीभगवानकी इच्छासे ही उनकी अप्राकृत देहका तीन बार पार्षिव देहमें प्रवेश हुआ था।

शिशुपाल और दन्तवकके निधनके पश्चात्

देवपि नारदजीने महाराज युधिष्ठिरको उनके पूर्व-जन्मका वृत्तान्त सुनाया था। इस पर महाराज युधिष्ठिरने नारदजी यह पूछा था कि देहेद्रिय-प्राण-रहित वैकुण्ठवासियोंकी प्राकृत देह क्या संभव है? इसके उत्तरमें देवपि नारदजीने यह कहा था—  
तायत्र क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्त्रात्मजौ तव।  
अधुना शापनिमुं वत्तौ कृष्णचक्रहतांहसौ ॥

(—श्रीमद्भा० ७।१।४६ )

—वे ही दोनों जय-विजय इस जन्ममें तुम्हारी मौसीके लड़के शिशुपाल और दन्तवकके रूपमें क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुए थे। भगवान श्रीकृष्णके चक्रका स्पर्शं प्राप्त हो जानेसे उनके सारे पाप नष्ट हो गये और वे सनकादिके शापसे मुक्त हो गये।

उक्त श्लोककी टीकामें श्रीधर स्वामीने लिखा है—‘कृष्णचक्रेण हतमंहो ययोस्तौ। तयोः पापमेव हतं न तु तौ।’ इसका अर्थ यह है कि श्रीकृष्णके नक्से उनका पाप ही मारा गया अर्थात् ध्वंस हुआ, वे दोनों नहीं मारे गये।

गोपियोंके गुणमय देहत्यागके विषयमें भी ठीक पहो सिद्धान्त समझना चाहिए। जब पतियोंने बाधा दी तब कृष्णकी इच्छासे तात्कालिक कल्पित गुणमय देहमें अप्राकृत देहवाली गोपियोंने प्रवेश किया था। राम-प्रसङ्गमें श्रीशुकदेवजीने इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है—

नासूप्यन खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायथा ।  
मन्यमाना: स्वयाश्वंस्थान स्वान्-स्वाम् वज्ञीकस् ॥

(—श्रीमद्भा० १०।३।३७ )

गोपियोंके रासस्थलीमें चले जानेपर भी गोपोंने श्रीकृष्णके प्रति तनिक भी दोष दृष्टि नहीं की। इसका कारण यह था कि गोपोंने ऐसा अनुभव किया कि हमारी पत्नियाँ हमारे पास ही सौयी हैं। भगवानकी इच्छासे ही उस समय श्रीकृष्णपार्वतीस्थितां गोपियाँ मायाकल्पित देहमें प्रविष्ट हुईं पति के पास स्थित थीं। परन्तु वेणु-नादको सुनते ही मायिक देहको त्याग करके श्रीकृष्णके समीप पहुँच गयी थीं। उन्होंने मायाकल्पित गुणमय देहका त्याग किया था, न कि अपने निजस्व—स्वरूप गत देहका।

यदि जय और विजय भगवानके प्रति द्वेषाभास के साथ निरन्तर उनके स्मरणके प्रभावसे तादृश

असुर देहका त्याग कर वेकुण्ठ गतिको प्राप्त हो सकते हैं, तो ब्रजरमणियाँ प्रगाढ़ प्रीतिपूर्वक उन्हीं श्रीकृष्णके निरन्तर स्मरणके प्रभावसे श्रीकृष्णको प्राप्त हो गयीं—इस विषयमें संदेहका कोई कारण ही नहीं हो सकता। 'तन्मयता'—शब्दका तात्पर्य प्रगाढ़-आसक्तिसे है। जैसे कामी पुरुषके मनमें सर्वदा केवल खोकी ही स्फूर्ति हुप्रा करती है, तैसे ही श्रीकृष्णके प्रति काम, क्रोध और स्नेह आदि भावोंद्वारा उनके प्रति प्रगाढ़ आसक्ति उत्पन्न होती है। 'तन्मयता' का अर्थ अनुरक्तात्मता और प्रलीनता भी है।

—त्रिदण्ड स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रोती महाराज

## श्रीचैतन्य-शिक्षामृत

### पंचम वृष्टि-चतुर्थधारा

#### रति-विचार

ज्ञानके विषयमें हमने विस्तृत रूपसे विचार किया। अब भाव-भक्तिके सम्बन्धमें कुछ विचार प्रस्तुत किया जा रहा है। भाव-भक्ति, चाहे वह

साधन-भक्तिसे उदित हुई हो अथवा कृष्ण या कृष्ण-भक्तोंकी कृपासे उदित हुई हो, वह कृष्ण-भक्तोंके संगके बिना पुष्ट नहीं हो सकती है।\* दूसरी तरफ कृष्ण-भक्तोंके प्रति अपराध होनेपर वह अमूल्य

\* आराधनानां सर्वेऽपि विष्णुराधनं परम् । तस्मात् परतरं देवि तदौशानां समर्चनम् ॥

—[ पञ्चपुराण ]

मत्सेवया भगवतः कुटस्थस्य मधुद्विषः । रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोव्यंसनाहृनः ॥

यावन्ति भगवद्भक्तेरज्ञानि कदितानि हि । प्रायस्तावन्ति तदभवत्भवेतरपि द्रुधः विदुः ।

रति-धन कमशः क्षीण होते-होते सर्वथा लुप्त हो पड़ता है अथवा न्यून-श्रेणीका हो पड़ता है। वास्तव में यह बड़े दुमधियका विषय होता है। इसलिए भक्तिसाधकों और जातभाव पुरुषोंको बड़ी साधानीपूर्वक प्रीतिके साथ भक्त-संग करना चाहिए और इस बातको सदैव स्मरण रखना चाहिए कि उन भक्तोंके प्रति किसी प्रकारसे अपराध न बन जाय। यदि साधक साधन-कालमें अपराधोंसे बच कर प्रतिपूर्वक भक्त-संग करे तो उसकी शीघ्र ही अन्तर्धन-निवृत्ति होनेपर वह भावदशामें उपस्थित हो जायगा और जात-भाव-पुरुष शीघ्र ही प्रेम-दशामें उपस्थित हो जायगा।

कहीं-कहीं ऐसा भी संदेह किया जाता है कि जिस रतिको इतना अमूल्य धन कहा गया है, वह भगवद्भक्तिके अतिरिक्त अन्यान्य प्रकारके लोगोंमें भी दिखलायी पड़ता है। भक्तोंकी शुद्धरतिकी उपलब्धीके लिए उक्त विषयमें विचार किया जा रहा है। हमलोग किसी दूसरे सम्प्रदाय या लोगोंके भजनकी परिपाटी या पद्धतिके प्रति विद्वेषकी भावनासे, प्रेरित होकर कुछ भी नहीं कहेंगे, केवल मात्र भक्तोंकी जिज्ञासासे उनकी भक्ति-मृत्तिकी हड़ता और पुष्टिके लिए जो कुछ कहेंगे, उससे यदि किसी दूसरे सम्प्रदायकी भजन-पद्धतिके विशद् कुछ बातें जान पड़ें, तो उसके लिए हम पहले ही क्षमा प्रार्थना करते हैं।

बड़े सीभाग्यसे जीवको शुद्धभक्तिमें रति होती है। ग्रन्थ लिखकर दूसरोंको रतिकी शिक्षा देना असंभव है। जिन्हें शुद्धभक्तिमें अद्वा है, उन्हींके

लिए जब यह ग्रन्थ लिखा गया है, तब दूसरे सम्प्रदायके लोग यदि संयोगवश इसे पढ़ लें, तो इसमें हमारा कोई दोष नहीं है। यदि भाग्यवश वे इसके विचारोंसे एकमत हो, तो सब प्रकारसे कल्याण-ही कल्याण है। और यदि एकमत न हों, तो उनसे हमारी यह विनीत प्रार्थना है कि वे इस ग्रन्थको किसी दूसरे को दे दें, हमारे प्रति असन्तुष्ट न हों।

अभेदब्रह्मवादियोंका मत यह है कि—ब्रह्म निर्गुण है। किसी सगुण उपायका अवलम्बन करने से निर्गुण-ब्रह्मकी उपासना नहीं होती। जीव सगुण है; अतएव जीवोंके लिए सगुण उपासनाके अतिरिक्त कोई दूसरा चारा ही नहीं है। इसलिए जीव सर्वप्रथय सगुणतत्त्वके अन्तर्गत किसी काल्पनिक मूर्त्तिको उपासना करे। इस उपासनासे कमशः उसकी बुद्धि स्थिर होने पर साधकजीव उस कलिपत मूर्त्तिकी उपासनासे अपनी बुद्धिको निर्गुण ब्रह्मके प्रति लगा कर ज्ञान और वेरायका अनुसंधान करे। अपरोक्षानुभूति ग्रन्थमें अभेदब्रह्मवादके प्रधान आचार्य श्रीदंकराचार्यने ऐसा, निर्देश दिया है कि वेराय, विवेक, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, अद्वा, समाधान और मुमुक्षुता—नी साधनोंके योगसे पुरुष विचार करते-करते अपना कर्त्तव्य-ज्ञान प्राप्त करते हैं। पूर्वोक्त साधनसमूह कैसे प्रभूत (उत्पन्न) होते हैं, इस विषयमें उन्होंने बतलाया है कि स्ववर्णाश्रिम धर्म, तपस्या और हरितोषण—ये तीन प्रक्रियाएँ मुचारु रूपसे सम्पन्न होनेपर उक्त नी प्रकारके साधनोंके लिये उपयुक्त अधिकारी हुआ जा सकता है। समस्त प्रकारके सगुण देतवाओंकी उपासना

को ही उन्होंने 'हरितोपण' बतलाया है। अद्वैत-वादियोंके विचारसे सूर्य, गणेश शक्ति, शिव और विष्णु ये पाँच सगुण देवता हैं।\* इन पाँचों सगुण देवताओंकी उपासना पद्धतिको 'पञ्चोपासना' कहते हैं। उनके अनुसार पञ्चोपासनासे चित्तकी एकाग्रता साधित होती है। चित्त एकाग्र होनेसे क्रमशः निविषयता लाभ होती है अर्थात् चित्तशुद्धि होती है और चित्तशुद्धि होनेपर निविशेष-निगुण एवं ब्रह्मका ज्ञान प्राप्त होता है। इसी ज्ञानको प्रगाढ़ता संपादित होनेपर 'मैं ही ब्रह्म हूँ'—ऐसा ज्ञान होता है।

सूक्ष्म रूपसे विवेचना करनेपर इस मिद्धान्त पर उपनीत हुआ जा सकता है कि अद्वैतवादी ब्रह्म को ही एकमात्र वस्तु स्वीकार करते हैं। अन्यान्य सबको वे अवस्तु मानते हैं। इतना ही नहीं, सर्वप्रथम साधनकालमें जिस देवताकी उपासनाकी उन्होंने विधि बनाई है, वे देवता भी अवस्तु ही हैं। निविशेष अवस्थामें उस देवताकी कोई स्थिति नहीं है। इसलिये वे देवता काल्पनिक हैं मायावादके अन्तर्गत रामकृष्ण आदिकी मूर्तियोंकी भी उपासना

देखी जाती है। वे सभी काल्पनिक एवं अवस्तुके अन्तर्गत हो हैं। काली-दुर्गा आदि शक्ति, सूर्य, गणेश, शिव और विष्णु उनके मतमें काल्पनिक देवता हैं। अष्टाङ्ग योगी और पञ्चोपासक भी इन्होंके अनुगत होते हैं और अन्तमें ब्रह्मवादी एवं मुक्ति के पक्षपाती होते हैं।

उपास्य देवताको मिथ्या और कल्पित ज्ञानकर भी ये लोग उनको उपासना करते हैं। ऐसे लोगोंमें उपासना कालमें जो रतिके लक्षण देखे जाते हैं उसीको वे रति कहना चाहते हैं, उत्सवोंमें वे कम्प, स्वेद, वैवर्य, अथृ और पुलकादि लक्षणसे अकान्त होकर (?) नृत्य करते हैं। ये सभी रतिके लक्षण होनेपर भी हमने जिस शुद्धा अद्वा और निरुपाधिक रतिका उल्लेख किया है, उससे उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। [क]

### पाँच प्रकारकी रतियाँ

रति कितने प्रकार की होती है?—इसका भली भाँति विचार करनेसे संसारमें पाँच प्रकारकी रतियाँ हृष्टिगोचर होती हैं—(१) शुद्धा रति, (२)

\* तेन त देवता तत्वं पृष्ठा वादान् वितेनिरे । नानाशास्त्रविदो विप्रा मिथः साधनभूषनैः ॥

हरिद्वं शिवोद्वं भाष्करो देवमित्यपि । काल एव स्वभावस्तु कर्मवेति पृथग् जगुः ॥

अथ खितः स राजपि बहुवादाकुलान्तरः । निःश्वसन्नभवत्तृष्णी मोक्षमार्गे संसंशयः ॥

—[ नारदीये हरिभक्तिमुधोदये अ० ३ ]

[क] व्यक्तं ममृणतेवान्तर्लक्ष्यते रतिलक्षणम् । मुमुक्षुप्रभृतिनाच्चेद्भवेदेषा रतिनं हि ॥

विमुक्ताखिलतपैषा मुक्तेरपि विमृग्यते । या कृष्णोनातिगोप्याशु भजदम्योऽपि न दीयते ॥

सा भूक्तिमुक्तिकामत्वाच्छुद्धा भक्तिमकुर्वताम् । हृदये संभवत्येषां कर्त्त भागवती रतिः ॥

—[ भ. र. सि. पृ. ३. लहरी ]

च्छाया रति, (३) प्रतिबिम्बित रति, (४) जड़ रति,  
(५) कपट रति ।

शुद्धा रति—शुद्धा रतिको शास्त्रोंमें आत्मरति, भगवती-रति, चिद्रति एवं भाव भी कहा गया है । जीव विशुद्ध दशामें जिस वृत्तिके द्वारा भगवत्-तत्त्व के साथ युक्त होता है, उसका नाम रति है । उस समय सांसारिक विषयोंमें जीवकी गति नहीं होती । एकनिष्ठता ही रतिका प्रधान लक्षण है । आद्रंता, मासृष्टि, उल्लास, रुचि, आसक्ति- ये सब रतिकी ही विभिन्न अवस्थाओंके नाम हैं ।

च्छायारति—जब उक्त शुद्धा रति अत्यन्त अल्प मात्रामें प्रकाशित होती है, तो उसे च्छाया रति कहते हैं । [क] यह च्छाया रति जब तक रहती है तब तक अत्यन्त खुद्र, कौतूहलमयी और दुःखहारणी होती है । भक्तोंके संगसे अथवा वैधो भक्तिके इंगोंके साधन कालमें इस रतिकी उपलब्धि

च्छाया-रति चचला होती है अर्थात् स्थायी नहीं है । साधारण अतत्त्वज्ञ लोगोंमें भी भक्त संगके प्रभावसे कभा-कभा ऐसी रति लक्षित होती है । बड़े भाग्यसे यह च्छाया अर्थात् शुद्धारतिकी कान्ति-स्वरूपा रात जीवके हृदयमें उदित होती है । क्योंकि इसके उदय होनेसे जावाका उत्तरात्तर कल्याण होता है । यह च्छाया रति वास्तविक भाव नहीं है । इसे भावा-भास कहते हैं । यदि विशुद्ध भक्तजनोंकी कृपा मिल जाती है, तब यह भावाभास भी अत्यन्त शीघ्र ही भावके रूपमें परिवर्तित हो जाता है, परन्तु भक्तजनोंके प्रति ग्रपणध बन जानेसे च्छाया-रति शीघ्र ही लुप्त हो जाती है ।

प्रतिबिम्बित रति—अभेद ब्रह्मवादियों अथवा उनके आधान कल्पित देवि-देवियोंके उपासकोंके हृदयमें, भक्त-संगके कारण भक्त-हृदयमें स्थित रति प्रतिबिम्बित होनी है । किसी भक्तके सातिवक

[क] किन्तु वालचमत्कारकारी तच्चिह्नीक्षया । अभिजेन गृहोधोऽयं रत्याभासः प्रकीर्तिः ॥

प्रतिबिम्बस्तथा च्छाया रत्याभासो द्विषामतः । खुद्रकौतूहलमयी चचला दुःखहारणी ॥

रतेच्छाया भवेत् किञ्चित् तत्साहश्यावलम्बिनी ॥

हरिप्रियकिंयाकालदेशपात्रादिसङ्घमात् । अप्यानुपकिंकादेषा कवचिदज्ञेष्वपीठयते ॥

किन्तु भाग्य विना नासी भावच्छायाप्युदच्छति । यदभ्युदयतः शेषं तत्र स्य दुत्तरोत्तरम् ॥

हरिप्रियजनस्यैव प्रसादभरलाभतः । भावाभासोऽपि सहसा भावत्वमुपगच्छति ॥

तस्मिन्नेवापराधेन भावाभासोऽप्यनुत्तमः । करेण धयमाप्नोति खस्थ पूर्णशशी यथा ॥

भावोऽप्यभावमायाति कुण्डप्रेष्टापराधतः । आभासताच शनकेन्द्रून जातीयतामपि ॥

गाङ्गासङ्गात् सदायाति, मुमुक्षी सुप्रतिष्ठिते । आभासतामष्टौ किम्बा भजनीयेषाभावताम् ॥

अतएव कवचित्तोऽपि नव्यभक्तेषु हृथते । धरणीश्वरमावोऽयं नृत्यादौ मुक्तिपक्षगः ॥

—[ भ. र. सि. ३ लहरी ]

विकारोंके माधुर्यको देखकर पूर्वोक्त मुक्ति पक्षीय लोगोंके कीर्तन आदिके समय या अन्य उत्सवोंमें जो सात्त्विक विकारोंकी अनुकृति होती है, उसे ही प्रतिविम्बित रति कहते हैं। अतएव सगुण उपासकोंमें रतिके लक्षण अधिकतर इसी रूपमें हुआ करते हैं। इसमें मूल बात यह है कि सगुण उपासक अपने आचार्यके द्वारा प्रदर्शित पद्धति के अनुसार मुक्तिको प्राप्त करना बहुत ही कठिन समझ कर कल्पित देवताओंके समीप सहज रति-लक्षणोंको प्रकाश कर अपने हृदयकी वेदनाको प्रदर्शित करते हैं। इससे उनके अंगोंमें कुछ-कुछ रतिक लक्षणोंसे मिलते-जुलते लक्षण उत्पन्न होते हैं। ये लक्षण जान बूझकर उत्पन्न किये जाते हैं या कभी-कभी हृदय-वेदना जनाते समय अपने आप भी उत्पन्न होते हैं। इन लोगोंका चरम उद्देश्य, भोग या मुक्ति सम्बन्धी सुखकी प्राप्ति हाता है।

द्वाया रति या प्रतिविम्बित रति दोनों ही रत्याभास-मात्र हैं। शुद्धि रति नहीं है। शुद्धा रति केवल भगवन्निष्ठ होती है। अर्थात् इस रतिमें नित्य भगवत्-स्वरूप हो विषय होता है तथा जीव इस रतिका आश्रय होता है। कल्पित देव-देवियोंके सिद्धान्तके अनुसार जीव नित्य तरत नहीं है। इसलिये वह रतिका आश्रय नहीं हो सकता। साथ ही भगवानका भी कोई स्वरूपगत् विशेष नहीं है।

वयोंकि अन्तमें अभेद ज्ञान ही उनका प्रयोजन होता है। इसलिये उनके विचारसे शुद्धा रतिका विषय शुद्ध ब्रह्म भी नहीं हो सकता। इसलिये अभेद वादियोंमें जो रति दीख पड़ती है वह शुद्धा रतिका प्रतिविम्ब [क] अथवा जड़ रतिका रूपान्तर मात्र है। कहीं-कहीं यह कपट रति भी हो सकती है। जिस स्थल पर रतिके आश्रय जीव अपनी सत्ताको अनित्य मानते हैं एवं विषय—परमेश्वरको निविशेष अर्थात् स्वरूप-शून्य निराकार आदि मानते हैं, वहाँ उपासकों रति अनित्य, औपाधिक, कपट, जड़गत या प्रतिविम्ब स्वरूप होती है। घटनावशतः अर्थात् अपने आचार्यका अन्तनिहित उद्देश्य समझ कर ही हो अथवा अपनी रूचिसे ही हो पूर्वोक्त पाँच प्रकारके उपासकोंमें इस प्रकारकी भावना उदित हो जाय कि मेरे उपास्यका स्वरूप नित्य है और मैं उनका नित्य किंकर हूँ, तब कहीं उनके हृदयमें शुद्धा-रतिका आंशिक आविर्भाव सम्भव है। विष्णु, शिव और गणेशके उपासकोंकी यह रति पहले पहल चैतन्योद्देशिनी होकर क्रमशः श्रीकृष्ण-रतिके रूपमें पर्यंवसित होती है। सूर्य उपासकोंकी रति भर्ग-चिन्तासे धीरे-धीरे ऊपर उठकर भर्गके भीतर स्थित श्रीनारायणके प्रति लग जाती है। शक्तिके उपासकों को रति क्रमशः शक्ति चिन्तनका अतिक्रमण कर शक्तिमान भगवानका आश्रय ग्रहण करती है।

[क] अथमामीष निर्वाही रतिलक्षणलक्षितः । भोगापवर्गसौख्यांशव्यञ्जकः प्रति विम्बकः ॥

दैवात् सद्भन्तसंगेन कीर्तनाद्यनुसारिणाम् । प्रायः प्रसन्नमनसां भोगमोक्षादिरागिणाम् ॥

केषाचिद्दृष्टिभावेन्द्रोः प्रतिविम्ब उद्दत्तिः । तद्वक्तुष्मभःस्थ तत्संसर्गप्रभावतः ॥

श्रीमद्भगवद् गीतामें श्रीकृष्णने ऐसा कहा है कि जो लोग दूसरे-दूसरे देवताभौंकी उपासना करते हैं, वे लोग उपासनाकी साधात् विधिका किञ्चित् परिणाममें उलंघन करके मेरी ही उपासना करते हैं। [क]

वे लोग भी अन्तमें मुझे ही प्राप्त होंगे। इस विषयमें मूल सिद्धान्त यह है इन लोगोंकी रति के आधय और विषय—दोनोंमें ही कुछ-कुछ दोष रहनेके कारण रति पूर्ण नहीं होती। उनको विशुद्ध भगवद्भक्तोंका संग मिलनेपर उनके संगमें क्रमशः आलोचना आदिके द्वारा उनकी रति पुष्ट होनेपर जन्म-जन्मान्तरोंमें आधय और विषयगत दोष दूर हो जाते हैं। उस अवस्थामें उन जीवोंको विशुद्ध कृष्ण भक्ति प्राप्त होती है। बीच-बीचका साधुसंग ही रतिको पुष्टि करनेका प्रधान हेतु बनता रहता है।

जड़रति—जड़रतिके उदाहरण संसारमें सर्वत्र ही पचुर मात्रामें देखे जाते हैं। मादक द्रव्योंका सेवन करनेवालों, वेश्यसत्त्व पुरुषों, गृहासत्त्व और उदर परायण लोगोंके जीवनमें जड़रति सहज ही लक्षित होती है। लैलाके मरनेपर उसका आशिक मजनू भी मर जाता है। उर्वशीके चले जानेपर महाराज यथातिका प्राण-वियोग हो जाता है।

जुलियटके लिए रोमियोर भो जीवनकी आशा त्याग कर देता है। ऐसे ही अनेकानेक उदाहरण पुस्तकोंमें देखे जा सकते हैं। क्या ये रतिके लक्षण हैं? तब यह रति-सी दीखनेवाली चोज क्या है?—इस विषयको कुछ विशेष ध्यानपूर्वक अनुशीलन करनेकी आवश्यकता है। जीव चिन्मय तत्त्व है। जीवके विशुद्ध चिन्मय-स्वरूपमें भगवद् रति स्वतः-सिद्ध रूपमें है। उस समय जीवका स्वधर्म है—भगवद् रति। उस शुद्धावस्थामें रतिका आधय है—शुद्धजीव और विषय है—भगवान्! परन्तु जीव मायाद्वारा जड़बद्ध हो पड़ता है, तब उसकी जड़ शरीरमें ही 'मै' और 'मेरा'का अभिमान दृढ़ हो पड़ता है। यह तो हुआ आधयका विकृत रूप। अब जीवकी जड़ शरीरमें आत्मबुद्धिके कारण उसका स्वधर्म—भगवद् रति भी विकृत हो पड़ती है अर्थात् वह भगवान् रूप आधयका परित्यागकर जड़ शरीर या जड़ पदार्थोंको विषय मानकर उनके साथ जुड़ जाती है। अभेदवादी सगुण उपासकगण जो देव-देवियोंकी पूजा आदि करते हैं—वह सब कुछ कल्पना-ही-कल्पना है। जड़ीय कल्पनागत विषयोंमें जड़रति जो कार्य करती है, वही कार्य इन कल्पित देव-देवियोंके सम्बन्धमें भी करती है। गाँलीभरका उपन्यास पढ़कर या सुनकर जिस प्रकार पाठक और श्रोता उक्त कल्पित मानव पात्रकी सहानुभूतिमें—

[क] अनन्यादिचन्तयन्त्यो मां ये जनाः पयुंपासते । तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥  
येऽप्यन्यदेवताभक्ताः यजन्ते धद्यान्विताः । तेऽपि पापेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥  
यान्ति देवत्रता देवान् पितृन् यान्ति पितृत्रताः । भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ॥

दुःखमें दुखी और सुखमें सुखी होकर कभी रोते हैं और कभी हँसते हैं। उनका यह रोना और हँसना—रति के ही तो लक्षण हैं; उसी प्रकार कल्पित देव-देवियोंकी वरित लीलाओंको स्मरण करके उनके सेवकोंमें भी रति के लक्षण प्रकाशित हो तो इसमें आश्चर्यकी व्याख्या बात है?

कहीं रामायणका पाठ हो रहा था। बनवास-प्रसंग चल रहा था। श्रीरामचन्द्र की शिल्यासे मिल-कर लक्षण और सीताको बहुकल बस्त्र धारण कराकर बन गमनके लिए प्रस्तुत हो रहे हैं। श्रोताओंमें एक वृद्धा महिला रामका बनगमन सुन कर बड़ी व्याकुल होकर जोर-जोरसे रोने लगी। अन्यान्य श्रोताओंने जब उसके इस प्रकार रोनेका कारण पूछा तो उसने बतलाया कि 'आज सबेरे मेरी एक बकरी बनमें कहीं चली गयी और फिर लौटी नहीं। बड़ी खोजकी परन्तु वह मिली नहीं। अब यहाँ पर रामका बनगमन सुनकर बकरीकी बात स्मरण हो आनेके कारण मुझसे रहा नहीं जाता।' अब यहाँ विचार करनेकी बात है कि ईश्वर-उपासनाके नाम पर जो लोग रोते हैं—उन सभीमें शुद्धा रति नहीं होती। उनमेंसे अधिकांश लोगोंमें जड़रति ही होती है। इस जड़ रतिमें भी कहीं-कहीं प्रतिविम्ब रति के लक्षणसमूह प्रकाशित होते हैं, जो कल्पित देवोपासकों और ब्रह्मावादियोंमें लक्षित होते हैं।

कपट रति—पूर्वोक्त चारों प्रकारकी रतियोंमें ही कल्पिताकी सम्भावना है। कोई व्यभिचारिणी खी अपने पतिका संदेह दूर करनेके लिये उसके प्रति कपट जड़रति प्रकाशित करती है। बहुतसे

धूतंलोग नैवेद्य खाद्यसामग्री, खास कर बकरेके मांस के लोभसे कल्पित देवदेवी-पूजाके अवसर पर अनेक प्रकारके प्रतिविम्बित रति के लक्षणोंको प्रकाश करते हैं—यह भी कपट रति का उदाहरण है। आचार्य का प्रियपात्र बननेके लिये अथवा साधुमण्डली द्वारा प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी आशासे या कालनेमिकी भाँति कोई नार्योद्धारके लिए या महोत्सवोंमें सम्मान प्राप्तिकी आशासे बहुतेरे लोग कपटतापूर्वक भागवती रति के—नृत्य, स्वेद, पुलकाश्रु, कम्प, लोटना-पलोटना और कभी-कभी भाव तक—इन लक्षणोंको प्रदर्शित करते हैं परन्तु इन लोगोंके हृदयमें सात्त्विक विकारका सर्वथा अभोव ही होता है।\*

इस प्रकार संसारमें नाना जातीय रतियोंको देखकर उनके प्रति बुरी धारणाके कारण जो लोग विशुद्ध भागवती रति का यथायोग्य सम्मान नहीं करते, वे वास्तवमें बड़े शोचनीय और दुर्भागी हैं। यदि कहीं ऐसा देखा जाय कि किसी व्यक्तिने कभी भी कोई साधन नहीं किया, अथवा अकस्मात उसके अन्दर भागवती रति प्रकाशित हो पड़ी। ऐसे स्थलमें यह समझना चाहिए कि उस व्यक्तिने पूर्व-पूर्व जन्मोंमें अनेक साधन किये थे, परन्तु किसी विघ्न के कारण उसके अन्दर अभीतक रति प्रकाशित नहीं हो पायी थी। अब किसी कारणसे विघ्न दूर हो जानेपर आच्छादित रति का आच्छादन दूर होने पर रति अकस्मात उदित हो गयी है। साथ-ही-साथ उस भक्तमें अपने आराध्य भगवानका अनुभव तथा इतर वस्तुओंमें वैराग्य—शुद्धा रति के अनुभावके रूप में उदित हो पड़ते हैं।†

\* तदस्मारं हृदयं बतेदं यदगृह्यमाणीर्दिनामधेयः ।

न विक्रियेताथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्रस्तेषु हर्षः ॥ [ श्रीमद्भाग २।३।२४ ]

† साधनेथाँ विना यदिमन्त्रकस्माद्द्वाव ईश्यते । विघ्नस्थगितमात्रोह्य प्राग् भवीय सुधावनम् ॥

—[ भ. र. मि. ३ लहरी ]

## प्रचार-प्रसङ्ग

### (क) आसाम और त्रिपुरा के विभिन्न स्थानों में शुद्धाभक्तिका प्रचार

समिति के प्रचारक त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त पर्यटक महाराज श्रीमन्महाप्रभु के आचरित और प्रचारित शुद्धाभक्तिका प्रचार बड़े जोर-शोर से भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशों में कर रहे हैं। लगभग एक माह तक आसाम प्रान्त की गीष्मकालीन राजधानी शिलांग और आसपास के अंचलों में तथा कुछ दिनों तक शिलांग में प्रचार कर इस समय आगरतल्ला में बड़े धूमधाम से प्रचार कार्य कर रहे हैं। उनके साथ में श्रीभक्त्यांगिरेणु ब्रह्मचारी, श्रीश्याम गोपाल ब्रह्मचारी तथा श्रीदाम ब्रह्मचारी हैं। ये लोग किसी स्थान पर भाषण, तो कहीं श्रीमद्भागवत का प्रवचन या पाठ और कहीं छायाचित्र के माध्यम से श्रीचैतन्यमहाप्रभु अथवा श्रीकृष्ण या श्रीराम की लीलाओं का प्रदर्शन करते हुए वेदान्त और श्रीमद्भागवत की निगृह शिक्षाओं एवं सिद्धान्तों का अति सहज-सरल रूप में प्रचार करते हैं। स्वामीजी के भाषणों, प्रवचनों एवं संकीर्तनों को सुनने के लिए सर्वत्र ही बड़ी संख्या में लोग एकत्रित होते हैं।

### (ख) चौबीस परगना और मेदिनीपुर में—

समिति के अन्य प्रचारक त्रिदण्डस्वामी भक्ति वेदान्त त्रिदण्डी महाराज श्रीकानाई दास ब्रह्मचारी, श्रीचित्प्रयानन्द ब्रह्मचारी तथा श्रीकृष्णकृष्ण ब्रह्मचारी के साथ चौबीस परगना (पश्चिम बंगाल) के कासीनगर आदि स्थानों में श्रीमन्महाप्रभु के प्रेमधर्म का प्रचार करके इस समय मेदिनीपुर जिले के विभिन्न ग्रामों में जोर-शोर से प्रचार कर रहे हैं।

### (ग) कुचबिहार, माथामाङ्गा, जलपाईगुड़ी और अलीपुरद्वारा में—

समिति के नव-प्रचारक श्रीराधामाधव ब्रह्मचारी जी, श्रीगोविन्दन ब्रह्मचारी, श्रीउज्ज्वलनीलमणि ब्रह्मचारी तथा श्रीशिवानन्द ब्रह्मचारी के साथ कुचबिहार, माथामाङ्गा, जलपाईगुड़ी और अलीपुरद्वारा आदि स्थानों में शुद्धाभक्तिका प्रचार बड़े उत्साह के साथ कर रहे हैं। इस प्रचार पार्टी के ब्रह्मचारियों की उम्र १५ से १८ वर्ष के बीच है। वर्ष में सभाओं में इन बाल-ब्रह्मचारियों को देखकर लोग पहले-पहल यह संदेह करते हैं कि ये छोटे-छोटे बालक बया कहेंगे। परन्तु उनके सुन्दर संकीर्तन-पदों एवं विचारपूर्ण भाषणों को सुनकर दंग रह जाते हैं। सर्वत्र ही इनका लोग आदर करते हैं।

## (घ) जयपुरमें श्रीभागवत पञ्चिकाके सम्पादकका प्रवचन—

श्रीभागवत पञ्चिकाके संपादक श्रीदण्ड स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज विशेष कार्यवश जयपुर पधारनेपर वहाँकी श्रद्धालु जनताके विशेष आग्रह पर श्रीगोविन्दजीके मंदिरके प्राङ्गण में १६ और २० अप्रैल १९६८ को उनके अत्यन्त हृदयस्पर्शी प्रवचन हुए। स्वामीजीने दोनों दिन भागवत धर्म—शुद्धा भगवद्भक्तिके सूक्ष्माति सूक्ष्म सिद्धान्तोंका उपदेश बड़ी ही रोचक शैलीमें किया। समस्त धोताओंने बड़े ही मुग्ध होकर उनका प्रवचन सुना। प्रवचनके पश्चात् श्रद्धालु श्रोताओंने स्वामीजीसे जयपुरमें बीच-बीचमें पधार कर प्रवचन करनेके लिए अनुरोध किया।

इस शुद्धाभक्तिके प्रचारकार्यमें काशी प्रसादजी, ऐडिशनल एस. पी. जयपुर, श्रीरामेश्वरदास टाटीवाले तथा श्रीग्रोप्रकाश दासाधिकारी आदि महोदयोंका उत्साह और प्रचेष्टा सराहनीय है।

—निजस्व-संवददाता

## वर्ष-शेष

### सम्पादकीत

आदरणीय पाठक-पाठिकाओं ! देखते-देखते ‘श्रीभागवत् पञ्चिका’ का तेरहवाँ वर्ष पूरा हो गया। ‘तेरहवाँ वर्ष पूरा हो गया’—कहनेसे जड़ीय स्वर्ण कालके अन्तर्गत आजसे तेरह वर्ष पूर्वं श्रीभागवत्-पञ्चिकाके जन्मका बोध होना स्वाभाविक सा लगता है। परन्तु यथार्थ बात इसके ठीक विपरीत है।

श्रीभागवत्-पञ्चिका श्रीमद्भागवतका एक आविभूति-विशेष है। श्रीमद्भागवत्—अप्राकृत सच्चिदानन्द-विघ्रह स्वर्ग-भगवान् श्रीकृष्णका आविभूति-विशेष है। अद्यज्ञान-परतत्त्व स्वरूप श्रीभगवान्, जिसे परब्रह्म भी कहा जाता है, जगत्के कल्याणके लिए शब्द-ब्रह्मके रूपमें नित्य आविभूत हैं और समयानुसार आविभूत होते हैं। परन्तु

आविभूत होने पर भी परब्रह्म और शब्दब्रह्म—दोनों अभिन्न तत्त्व हैं।

परब्रह्म प्राकृत कालसे सर्वथा अतीत होते हुए भी जिस समय वे भीमजगतमें अवतरित होते हैं, उस समय तत्त्वानभिज्ञ मूढ़ व्यक्ति उनको कालान्तर्गत एक साधारण मनुष्य या प्राणी मानकर उनमें भी जन्म, कर्म और देहत्याग आदि भौतिक व्यापारोंका प्रारोप करते हैं तथा उनके जन्म आदि की काल-गणना करते हैं। गीता आदि शास्त्रोंमें कालातीत भगवानके सम्बन्धमें ऐसी प्रवृत्तिको आमुरी प्रवृत्ति कहा गया है।

अवज्ञानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमास्तिषु ।

परं भावमज्ञानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

मोघासा मोघकर्मणो मोघज्ञाना विचेतसः ।  
राक्षसीमासुरीञ्चर्चं व प्रकृति मोहिनीं श्रिताः ॥  
( गीता ६।११-१२ )

वास्तवमें भगवानका जन्म-मरण नहीं होता । भगवानके जन्म-कर्म और सब कुछ दिव्य—अलौकिक होता है । भगवान नित्य है । उनका इस जगतमें आविभवि और तिरोभाव होता है । ठीक इसी प्रकारसे आप्राकृत शब्दब्रह्मका भी जगतके कल्याणके लिये आविभवि और तिरोभाव होता है । अतएव शब्दब्रह्मके प्रकाश स्वरूप 'श्रीभागवत पत्रिकाका भी इस भीम जगतमें आजसे तेरह वर्ष पूर्व केवलमात्र आविभवि ही समझता चाहिए ।

जिस प्रकारसे जगतके कल्याणके लिए अद्य-ज्ञान स्वरूप परब्रह्मके विविध प्रकाशोंका इस जगतमें आविभवि होता है, उसी प्रकार शब्दब्रह्मके विविध प्रकाशोंका भी इस जगतमें समय-समय पर आविभवि होता रहता है ।

वेद—मूर्तिमान शब्दब्रह्म हैं । कालके प्रभावसे जब साधारण लोगोंके लिए उनका अर्थ और तोत्पर्य बोधगम्य न रहा, तब शब्दब्रह्मका पुराण और इतिहास ( रामायण - महाभारत ) के रूपमें पुनः आविभवि हुआ । पुराण और इतिहासमें वेदके ही प्रतिपाद्य तत्त्वका सहज-सरल और बोधगम्य भाषामें वर्णन है । वेद और पुराण अभिज्ञ हैं । वस्तु एक है—परोसनेके दंग अलग-अलग हैं । काल के प्रभावसे पुराणोंके सम्बन्धमें विविध प्रकारकी शंकाएँ उत्पन्न होने पर वेद-पुराणके प्रतिपाद्यतत्त्व की पुनःप्रतिष्ठाकी आवश्यकता हुई । उस समय श्रीरामानुज, श्रीमध्व, श्रीविष्णुस्वामी और श्री

निम्बादित्य—इन चार वैष्णवाचायाँने तथा उनके शिष्य-प्रशिष्योंने वेदान्त, श्रीमद्भागवत और गीता आदि प्रस्थान त्रयीके ऊपर भाष्य, टीका और वृत्ति आदि प्रकाश कर विमुख व्यक्तियोंको पुनः वेदके प्रतिपाद्य तत्त्वके प्रति उन्मुख किया । पुनः भौतिकवादके बादलोंसे इन भाष्यों और टीकाओंके आच्छादित होने पर श्रीजयदेव, चण्डीदास, विद्यापति, गौड़ीय गोस्वामीगण तथा अन्यान्य सत्सम्प्रदायाचार्योंने गीत-गोविन्द, पदावलियाँ, भक्तिरसामृतसिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, षट्-सन्दर्भ, श्रीचैतन्यचरितामृत आदि ग्रन्थोंका प्रकाश कर पुनः शब्दब्रह्म का आविभवि कराया । ये सभी अप्राकृत शब्दब्रह्म के ही विभिन्न प्रकाश हैं । सभी जगन्मज्जलकारी हैं ।

आजके बतंमान युगको विज्ञान युग भी कह सकते हैं । विज्ञानके कतिपय आविष्कार आश्चर्यजनक हैं । इनमेंसे आवागमन ( Transportation ) और संचारका आदान-प्रदान—इन दो विषयोंमें विज्ञानका आविष्कार सर्वाधिक आश्चर्यजनक है । पहले लोग एक घण्टेमें चार मीलसे अधिक नहीं चल पाते थे, परन्तु अब घण्टेमें लोग एक हजार मीलकी हूरी पार कर सकते हैं । पहले लोग आध मीलकी बातें भी नहीं सुन सकते थे, अब वे घर बैठे हजारों मीलोंकी खबरें और गाने सुनते हैं । विज्ञानकी कृपासे दूरके देश और दूरके मनुष्य एक दूसरेके निकट हो गए हैं । आज सभी पड़ोसीके समान हैं ।

परन्तु साथ ही इस विज्ञानने भयंकर समस्याएँ भोगेदा कर दिया है । इस विज्ञानने निकटके पड़ोसी

को भी दूरकर दिया है। आजका मनुष्य अपने पड़ोसीको पहचानता नहीं। और की तो बात ही क्या, वह अपने पिता-माता, भाई, बन्धु, आत्मीय-स्वजन तकका भी पता नहीं रखता। इस विज्ञानने सभी क्षेत्रोंमें स्वार्थपरता और कपटताका बीज बोकर एक-दूसरेसे दूरकर रखता है। शरीर निकट है, पर हृदय दूर है। आज मनुष्य अपार जनसमूह के भीतर भी अपनेको बिलकुल अकेता और असहाय समझता है।

यही नहीं, आजके जड़ विज्ञानकी कृपासे पर-ब्रह्म और शब्द-ब्रह्मके अस्तित्वको भी लोप कर देनेका प्रबल प्रयास चल रहा है। प्राचीन संस्कृतिका नामोनिशाना मिटने पर देशके तथाकथित कर्णधार तुले हुए हैं। अबोध जनताको ईश्वर और धर्म-विरोधी बनानेका प्रबल अभियान चल रहा है—संकीर्ण साम्राज्यिकता और जातिवादको हटानेके नाम पर। परिवार नियोजनके नाम पर हिन्दूजाति को बधिया कर उसे समूल नष्ट किया जा रहा है—ब्रह्मचर्य आदि संयमोंको ताकपर रखकर व्यभिचार के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है। नस्ल सुधारनेके नाम पर देशमें हजारों वैज्ञानिक कसाई-खानोंका निर्माणकर प्रतिदिन लाखों गायोंको कत्ल किया जा रहा है; मुर्गी और मछली पालनके नाम पर निरामिष भोजी और देवभावापन लोगोंको भी क्रमशः मांसाहारी असुर या पशु बनाया जा रहा है। कला और संस्कृतिके विकाशके नाम पर माताघों, बहुओं और बेटियोंको खुले ग्राम वेश्या बनाया जा रहा है। स्वार्थी राजनीतिज्ञोंकी घृणित और हीनस्तरकी राष्ट्र-विरोधी भ्रष्ट राज-

नीतिके कारण सर्वत्र ही मुशासनका अभाव लक्षित हो रहा है। कहीं छात्र-ग्रान्दोलन, कहीं अध्यापक आन्दोलन, कहीं राजकर्मचारी-आन्दोलन तो कहीं साम्राज्यिक दंगे, कहीं नागा-विद्रोह, कहीं कुछ—नाना प्रकारकी विकट समस्याएँ देशको निगल जानेके लिये मुँह बाये लड़ी हैं।

आज विश्वमें जो अशान्तिकी आग जल रही है, उसका प्रमुख कारण है—अधिकारका प्रश्न। भगवत्-विमुखता या धर्म-विरोधिता जितने ही अधिक परिणाममें बढ़ेगी, लोगोंमें कर्त्तापन और भोक्तापनका अभिमान उसने ही परिणाममें बढ़ेगा। कर्त्तापन और भोक्तापन ही अधिकारका प्रश्न पैदा करता है—यह निश्चत सिद्धान्त है। आज विमुख विश्वमें सर्वत्र ही इस कल्पित अधिकारका प्रश्न उठ खड़ा हुआ है। एक देश पड़ोसी देशोंसे अधिकारके लिए लड़ता है, एक प्रदेश पड़ोसी प्रदेशोंसे, एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे अधिकारके लिये लड़ रहा है, राजनीतिक पार्टियाँ अपने अधिकारके लिये लड़ती हैं, क्षिर्या अपने अधिकारके लिये, छात्र अपने अधिकारके लिये, अध्यापक अपने अधिकारके लिये, मजदूर, कृषक, और पूँजीपति—सभी अपने अपने अधिकारोंके लिये संग्राम छेड़े हुए हैं—कुत्तों और भेसोंकी तरह लड़ रहे हैं। किसका क्या अधिकार है—इस पर गूढ़ रूपसे विचार करनेके लिये किसीको भी तनिक अवकाश और धर्यं नहीं,

वेद-शास्त्र अभ्यान्त प्रमाण हैं। सम्पूर्ण वेदपुराण उपनिषद् और स्मृतियोंका सार श्रीमद्भागवत है। इसीसे श्रीमद्भागवतको शास्त्र-शिरोमणि कहते हैं। श्रीमद्भागवतमें केवल मानव जातिकी ही नहीं,

अपितु निखिल विश्वके निखिल जीवोंकी सार्वकालिक एवं सार्वत्रिक निखिल समस्याओंका आश्चर्य रूपसे समाधान है। श्रीभागवत पत्रिका इसीका घर-घरमें संवाद देती है।

जैसे कलियुगपावनावतारी श्रीचंतन्य महाप्रभुजी के सर्वशास्त्रोंके सार-स्वरूप शिक्षाष्टकके एक इलोक को ही लीजिए—

तृणादपि मुनोचेन तरोरपि सहिष्णुना।

अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हृषिः ॥

( श्री इलोक )

जीव स्वरूपतः भगवानका नित्य सेवक है। वह पूर्ण चिदवस्तु ईश्वरका अणु चिदअंश है।

“ममवांशो जीवसोके जीवभूतः सनातनः” ( गीता )

“ईश्वर अंज जीव अविनाशी” ( रामचरितमानस )

अतएव वह स्वरूपतः ही क्षुद्र और भगवत्सेवक है। ईश्वर ही विश्व-ब्रह्माण्डके स्थान, पालयिता और प्रभु हैं। ईश्वरको ही जगदीश या जगन्नाथ कहते हैं। जीव—जगतका भोक्ता या कर्ता नहीं है। और की बात ही क्या, जड़ शरीर, मन, बुद्धि आदि कुछ भी जीवका अपना नहीं। परन्तु माया-मोहमें पड़कर बद्धजीव अपने विशुद्ध अणुचित् सेवक-स्वरूपको भूलकर अपनेको ही विश्वका भोक्ता और कर्ता समझ रहा है। इस कलिपत भोक्तापन तथा कर्त्तापनके अहंकारने ही जीवोंको यथर्थ सुखसे वंचित रखकर उन्हें कलिपत अधिकारकी लड़ाईके चक्करमें डालकर विश्वमें अशान्तिकी आग जला रखा है। अतः सर्वप्रथम मनुष्यको अपनेको तृणसे

भी दीन-हीन भगवत्सेवक जानना चाहिए। जीवका अपना अधिकार भगवत्सेवामें ही है; सेवाग्रहण करनेमें नहीं।

दूसरी बात सेवकको वृक्षसे भी अधिक सहिष्णु बनकर भगवत्सेवामें तत्पर रहना चाहिए। जैसे, वृक्ष बिना किसी भेदभावसे सबको छाया, लकड़ी और मीठा फल देता है, पत्थर मारने पर भी फल देता है, काटे जानेपर चूँ तक नहीं करता; ग्रीष्म-कालमें सुख जानेपर भी किसीसे अपने उपकारके बदलेमें पानी तक नहीं मार्गिता, वैसे ही परम सहिष्णु होकर भगवत्सेवा-ब्रत धारण करना चाहिए।

तीसरी बात सेवन-ब्रतमें सबसे बड़ी बाधक होती है—प्रतिष्ठा प्राप्तिको आशा। जीव स्वरूपतः क्षुद्र और भगवत्-सेवक है। अतः स्वयं मान-प्राप्ति की आशाको दूरसे छोड़ देना चाहिए।

चौथी बात, ईश्वर विश्वके अणु-अणुमें अन्तर्यामीके रूपमें व्याप्त हैं। अतएव मनुष्य पशु-पक्षी-सबके अन्तःकरणमें अपने प्रभुको विराजमान जान कर—सबको अपने प्रभुका वासस्थान जानकर सब को ही यथायोग्य सम्मान प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनेको दीन-हीन जानकर सर्वप्रकारसे सहिष्णु होकर प्रतिष्ठाकी आशासे दूर रहे तथा दूसरोंको भगवत्सेवक जानकर उनके साथ आदरपूर्वक व्यवहार करें, तो अशान्ति का कोई कारण नहीं।

सबसे मुख्य उक्त इलोककी पांचवीं बात है। सभी सुख चाहते हैं; कोई भी दुःख नहीं चाहता।

सुख प्राप्ति तथा दुःख निवृत्तिके लिये सभी आप्राप्ति चेष्टा भी करते हैं। परन्तु होता विपरीत ही है। ऐसा क्यों? चेष्टाएँ तो हो रही हैं, परन्तु शास्त्र कहते हैं ये चेष्टाएँ सर्वधा अविधिपूर्वक या अनुपयुक्त हैं। भूसेको जीवन भर कूटनेपर भी गेहौंका एक भी दाना क्या पाया जा सकता है? प्यासके मारे छटपटाता हुआ पथिक विषको पानी मानकर पान करे, तो क्या होगा? उसी प्रकार महाविष स्वरूप विषयोंके संग्रहके द्वारा आजका भोगी मानव सुखी होना चाहता है। परन्तु यह असंभव है—

- (१) कमठ पीर बले जामहि बारा।
- (२) बंध्यासुत बह काहुहि मारा।
- (३) तृष्णा जाइ बह मृगजल पाना।
- (४) बह जामहि सस सीस विधाना।
- (५) बंधकार बह रविहि नशावं।
- (६) हिम ते अनल प्रकट बह होई।
- (७) फूलहि नम बह बहुविधि फूला।
- जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
- (८) बारिमधे पृत दोइ बह।
- (९) सिकताते बह तैल ।—.....

यह सिद्धान्त अपेक्षा ॥

सभी असंभव संभव हो सकते हैं; परन्तु भगवान से विमुख व्यक्तिको कभी भी सुख नहीं मिल सकता है—यह निश्चित सिद्धान्त है। श्रुतियाँ भी कहती हैं—

(क) ‘यो वे भूमा तत् सुखं नान्यत् सुखमस्ति भूमेव सुखं भूमात्वेव विजिज्ञासितव्य’—( श्रुति )

अथर्वि भूमा पुरुष—भगवान ही सुख-स्वरूप है—सब सुखोंके मूल हैं, उनको छोड़कर किसी भी अन्य वस्तुमें सुख नहीं है। अतएव उनके विषयमें ही जिज्ञासा करना कर्तव्य है।

(ख) ‘आनन्दं ब्रह्म’—ब्रह्म ही आनन्द है।

(ग) ‘रसो वै सः’—ब्रह्म रस-स्वरूप है, उसीकी प्राप्तिमें आनन्द है। इत्यादि ।

(च) आनन्दमयोऽम्यासात् ( वेदान्त सूत्र )—

आनन्दमय पुरुषका निरन्तर भजन करना ही कर्तव्य है।

अतः सच्चिदानन्दकन्द नन्दनन्दन श्रीकृष्णकी सेवामें ही सुख है—इसमें शान्ति है। अतएव श्रीकृष्ण और कृष्णभक्ति ही अन्वेषणीय है।

श्रीभागवत-पत्रिका इन्हीं आनन्दमय भूमा पुरुष—श्रीकृष्ण और कृष्णभक्तिको—नित्य और मूर्त्तिमान सुखको पानेका मार्ग मानती है। जीव को उनके विषयमें ही दिव्य संवाद देती है कि कृष्ण ही एकमात्र सेव्य है, जीव उनके नित्य-दास है, और संसारकी सम्पूर्ण वस्तुएँ कृष्णकी सेवाके उपकरण हैं। इन उपकरणोंके द्वारा जीव श्रीकृष्णकी सेवा करके ही सांसारिक दुःखोंसे सदाके लिए छुटकारा पाकर सनातन सुखको प्राप्त कर सकता है। दूसरा कोई भी मार्ग नहीं है—सुख प्राप्तिरा। नान्य पन्था विद्यते अयनाय ।

—संपादक

छप गया !

छप गया !!

## जैवधर्म

बर्बोसे पाठक जिस ग्रन्थकी बड़ी उत्कष्टापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे थे, वह "जैवधर्म" ( हिन्दी संस्करण ) प्रकाशित हो गया है ।

यह ग्रन्थ वर्तमान वैद्युत जगतमें विशुद्ध भक्ति-भागीरथीकी पुनीत धाराको पुनः प्रबल वेगसे प्रवाहित करनेवाले, विभिन्न भाषाओंमें भगवद्भक्ति सम्बन्धी संकड़ों ग्रन्थोंके रचयिता श्रीचंतन्य महाप्रभु के प्रिय पार्षद सम्प्रभु गोस्वामी श्रील सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर द्वारा बंगला भाषामें लिखित मुश्रिसिद्ध ग्रन्थ—"जैवधर्म" का हिन्दी अनुवाद है । अनुवादक हैं—'श्रीभागवत पत्रिका' ( मासिक परमार्थिक पत्र ) के सम्पादक—त्रिदण्डी स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त नारायण महाराज ।

श्रीगौड़ीय वेदान्त समितिके अन्तर्गत अखिल भारतीय गौड़ीय मठोंके संस्थापक आचार्य १०८ श्रीश्रीमद्भक्ति प्रज्ञान केशव गोस्वामी महाराज द्वारा संपादित होनेसे इस ग्रन्थकी उपादेयता और भी बढ़ गयी है ।

इसमें अखिल विश्वके निखिल जीवोंके सार्वत्रिक, सार्वकालिक तथा सार्वजनिक नित्य और सनातन धर्म—जैवधर्म ( जीवका धर्म ) का हृदयग्राही एवं साङ्गोपाङ्ग वर्णन है । इसमें वेद-वेदान्त, श्रीमद्भागवत आदि पुराण, ऋग्यसूत्र, महाभारत, पंचरात्र एवं श्रीगौड़ीय-गोस्वामियोंके 'भक्तिरसामृत-सिन्धु, उज्ज्वलनीलमणि, पट्-सन्दर्भ, श्रीचंतन्यचरितामृत आदि सद्ग्रन्थोंका सार सहज सरल और हचिकर भाषामें उपन्यास-प्रणालीमें गागरमें सागरकी भाँति भरा हुआ है ।

हिन्दी भाषामें श्रीगौड़ीय-वैद्युतधर्म और उसके सिद्धान्तोंका यह सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ है । हिन्दी साहित्यमें अब तक वैद्युत धर्मके, विशेषतः श्रीगौड़ीय वैद्युत धर्मके परमोच्च दार्शनिक सिद्धान्तों एवं सर्वोत्कृष्ट उपासना पद्धतिका बोध करनेवाले ऐसे अपूर्व सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण ग्रन्थका सर्वथा अभाव था । यह "जैवधर्म" हिन्दी जगतकी इस अभावको पूर्ति कर दार्शनिक एवं धार्मिक जगतमें, विशेषतः वैद्युत जगतमें युगान्तर उपस्थित करेगा—इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

अतः पाठकोंसे हमारा विशेष अनुरोध है कि वे इस ग्रन्थरत्नका संग्रह कर अवश्य ही अध्ययन करें ।

सोलह पेजी २० × ३० आकारके ८०० पृष्ठोंकी सजिल्द पुस्तक । उत्तम कागज पर सुन्दर छपाई मूल्य केवल दस रुपये ।

श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ  
पो०—मथुरा ( उ. प्रा )

# श्रीभागवत-पत्रिका के नियम

१—“श्रीभागवत-पत्रिका” प्रतिवर्ष बारह महीनोंमें बारह संख्याओंमें प्रकाशित होंगी। इनका नया वर्ष सौर ज्येष्ठसे आरम्भ होकर सौर वैशाखमें समाप्त होता है। प्रति महीनेकी पूर्णिमा या अन्तिम दिवसके बीच ही प्रकाशित होंगी।

२—श्रीभागवत-पत्रिकाकी डाक-व्यय सहित वार्षिक भिक्षा ५), पाण्मासिक २॥) और प्रति संख्या ॥) है। भिक्षा अग्रिम जमा देनी होगी। बी. पी. द्वारा मँगानेसे डाक-व्यय अलग देना होगा।

३—श्रीपत्रिकाके प्रचलित वर्षके किसी भी समयमें प्रथम संख्यासे ग्राहक बन सकते हैं। पुरानी संख्याओंके लिये प्रकाशकके साथ पृथक् व्यवस्था करनी चाहिये।

४—ग्राहकोंको अपना नाम-पता स्पष्ट लिखना चाहिये। सर्वदा ग्राहक-संख्याका उल्लेख होना आवश्यक है। पत्रके उत्तरके लिये जवाबी पोस्टकार्ड देना चाहिये। श्रीपत्रिकाकी कोई

संख्या नहीं मिलेनेपर अगले महीनेके १५ दिनके भीतर ही सूचित करना चाहिये।

५—श्रीचैतन्य महाप्रभुकी आचरित और प्रचारित शिक्षा या शुद्ध-भक्तिके सम्बन्धमें निरपेक्ष लेखादि भेजनेसे आदर-पूर्वक ग्रहण किये जाते हैं। ईर्ष्यामूलक आक्रमणसूचक लेखादि श्रीपत्रिकामें प्रकाशित न होंगे। सत्-समालोचना सर्वदा आदर-णीय है। लेखोंको घटाने-बढ़ाने और छापने अथवा न छापनेका अधिकार सम्पादकको है। अमनोनीत लेख लौटाये नहीं जाते। लेखोंमें प्रकाशित मत के लिये सम्पादक उत्तरदायी नहीं हैं।

६—कोई जानकारी अथवा रूपये-पैसे भेजना हो तो—‘कार्याध्यक्ष’ अथवा ‘प्रकाशक’, श्रीभागवत-पत्रिका कार्यालय, कंसटीला, पो०—मथुरा (मथुरा) उ० प्र० के नाम से भेजना चाहिये।

७—विज्ञापनोंकी जानकारीके लिये कार्याध्यक्ष के निकट पृथक् पत्र व्यवहार करना चाहिये।

## श्रीगोड़ीय वेदान्त समिति द्वारा प्रकाशित शुद्धभक्ति ग्रन्थावली

१—SHRI CHAITANYA MAHAPRABHU  
(His Life and precepts) By Thakur Bhakti Vinode. Price Re. 1/- only

२—सहजिया-दलन (हिन्दी)—श्रीमद्भूक्तिविनोद ठाकुर और श्रीमद्भूक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुरके बङ्गलाके लेखोंका अनुवाद। भिक्षा ४४ न. पै.

३—जैव-धर्म (बङ्गला) लेखक—श्रीमद्भूक्तिविनोद

ठाकुर। भिक्षा ५०० रुपये

४—प्रेम-प्रदीप (बङ्गला) लेखक—श्रीमद्भूक्ति विनोद ठाकुर। भिक्षा १२५ न. पै.

५—प्रबन्धावली (बङ्गला) लेखक—श्रीमद्भूक्ति विनोद ठाकुर। भिक्षा १५० न. पै.

६—श्रीगोड़ीय-गीतिगुच्छ २ खंड (बङ्गला कीर्तन-संग्रह)। भिक्षा १७५ न. पै.

७—श्रीनवद्वीप-भावतरङ्ग (बङ्गला) लेखक श्रीमद्भूक्ति विनोद ठाकुर। भिक्षा २५ न. पै.

८—श्रीदामोदराष्ट्रकम् (संस्कृत) श्रीसनातन गोस्वामी की टीका आदिके साथ। भिक्षा ५० न. पै.

९—श्रीरूपानुग-भजन-सम्पत् (बङ्गला) भिक्षा ६२ न. पै।

१०—श्रीगोड़ीय-पत्रिका (बङ्गला परमार्थिक मासिक) वार्षिक भिक्षा २० रु०

११—श्रीभागवत-पत्रिका (हिन्दी पारमार्थिक मासिक) वार्षिक भिक्षा २० रु०

१२—श्रीमन्महाप्रभुर शिक्षा (बङ्गला) लेखक—श्रीभक्तिविनोद ठाकुर। भिक्षा १५० न. पै.

१३—जैव-धर्म (हिन्दी) लेखक—श्रीमद्भूक्तिविनोद ठाकुर। भिक्षा १००० रुपये

श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति के नियामक-महाराज द्वारा प्रतिष्ठित

## शुद्धभक्ति प्रचार केन्द्रसमूह

१. श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ—तेघरिपाड़ा, पो०-नवद्वीप (नदिया) प० बंग ।  
रक्षक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त वामन महाराज ।
२. श्रीकेशवजी गौड़ीय मठ—कंसटीला, पो०-मथुरा (मथुरा) उ० प्र० ।  
रक्षक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज ।
३. श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ—चौमाथा, पो०-चिनसुरा (हुगली) प० बंग ।  
रक्षक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त पर्यटक महाराज ।
४. श्रीगोलोकगंज गौड़ीय मठ—पो० गोलोकगंज, खालपाड़ा (आसाम) ।  
रक्षक—श्रीपुरुषोत्तमदास बाबाजी महाराज ।
५. श्रीपिछलदा गौड़ीय मठ—पिछलदा, पो०-आशुतियाबाड़ (मेदिनीपुर)।  
रक्षक—श्रीरमानाथ ब्रजबासी ।
६. श्रीसिद्धवाटी गौड़ीय मठ—सीधावाड़ी, पो०-रूपनारायणपुर (बढ़मान)।  
प० बंग । रक्षक—श्रीरासविहारी ब्रजबासी ।
७. श्रीगौड़ीय वेदान्त समिति—३३२, बोसपाड़ा लेन (कलकत्ता-३) ।  
रक्षक—श्रीराधामाधव ब्रह्मचारी ।
८. श्रीकृष्णचैतन्य गौड़ीय आश्रम—हरिखालो बाजार, पो०-इटामगरा (मेदिनीपुर), प० बंग । रक्षक—श्रीदयालहरि ब्रह्मचारी ।
९. श्रीपिछलदा पादपीठ—पिछलदा, पो०-आशुतियाबाड़ (मेदिनीपुर) प० बंग । रक्षक—श्रीगोरगोविन्द दासाधिकारी ।
१०. श्रीनरोत्तम गौड़ीय मठ—चड़ाईखोला, पो०-विचनदे (खालपाड़ा) आसाम । रक्षक—श्रीबंशाबदनानन्द दास बाबाजी महाराज ।
११. श्रीजावट गौड़ीय आश्रम—जावट-मोहल्ला, पो०-कालना (बढ़मान)।  
रक्षक—श्रीगोराचाँद दास बाबाजी महाराज ।
१२. श्रीगोपालजी गौड़ीय प्रचार-केन्द्र—कोरण्ट, पो०-रान्दियाहाट, (बालेश्वर) उड़ीसा । रक्षक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त हरिजन महाराज ।
१३. गौड़ीय सेवाश्रम—पुरानी कचहरी रोड, पो०-माथाभाङ्गा (कुचबिहार)।  
रक्षक—श्रीअधोक्षजदास बाबाजी महाराज ।
१४. श्रीजगन्नाथ गौड़ीय आश्रम—गुडदडा पो०-श्यामनगर (२४ परगना)।  
रक्षक—त्रिदण्डस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त विष्णुदेवत महाराज ।